

विदुरनीति



विदुरनीति



प्रस्तुति
सत्यवीर शास्त्री

मनोज पब्लिकेशन्स

भारतीय कॉपीराइट ऐक्ट के अन्तर्गत इस पुस्तक की सामग्री तथा रेखाचित्रों के अधिकार 'मनोज पब्लिकेशन्स, 761, मेन रोड बुराड़ी, दिल्ली-84' के पास सुरक्षित हैं, इसलिए कोई भी सज्जन इस पुस्तक का नाम, टाइटल-डिजाइन, अन्दर का मैटर व चित्र आदि आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़कर एवं किसी भी भाषा में छापने व प्रकाशित करने का साहस न करें, अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार स्वयं होंगे।

प्रकाशक :

मनोज पब्लिकेशन्स

761, मेन रोड बुराड़ी

दिल्ली-110084

फोन : 7258349, 7258546, 7248869

मुद्रक :

आदर्श प्रिण्टर्स

नवीन शाहदरा,

दिल्ली-110032

मूल्य:

पेपर बैक संस्करण : 30/-

सजिल्द व लाइब्रेरी संस्करण : 60/-

संस्करण

1998

लेखक की ओर से

संस्कृत साहित्य में इस नीतिशास्त्र की लघु पुस्तिका अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। श्री महाभारत के उद्योग पर्व एवं श्रीमद्भागवत् में इसका उल्लेख मिलता है। महात्मा विदुर ने राजा धृतराष्ट्र को जो मूल्यवान् और लोक-कल्याण करनेवाली बहुत-सी बातें बतलाई हैं, उद्योग पर्व के आठवें अध्याय के 33वें से 40वें श्लोक तक यही प्रसंग है। इस नीतिशास्त्र में सदाचार, धर्म, सुख-दुःख प्राप्ति के साधन, त्याग्य और ग्राह्य गुणों तथा कर्मों का निर्णय, त्याग की महिमा, मित्र और शत्रु के लक्षण आदि का विशद वर्णन करते हुए राजा के धर्म का भी अति सुन्दर निरूपण किया गया है।

यह संकलन सभी वर्गों के पाठकों के लिए उपयोगी है। इसकी उपादेयता की घोषणा करते हुए महर्षि व्यासजी ने कहा है—

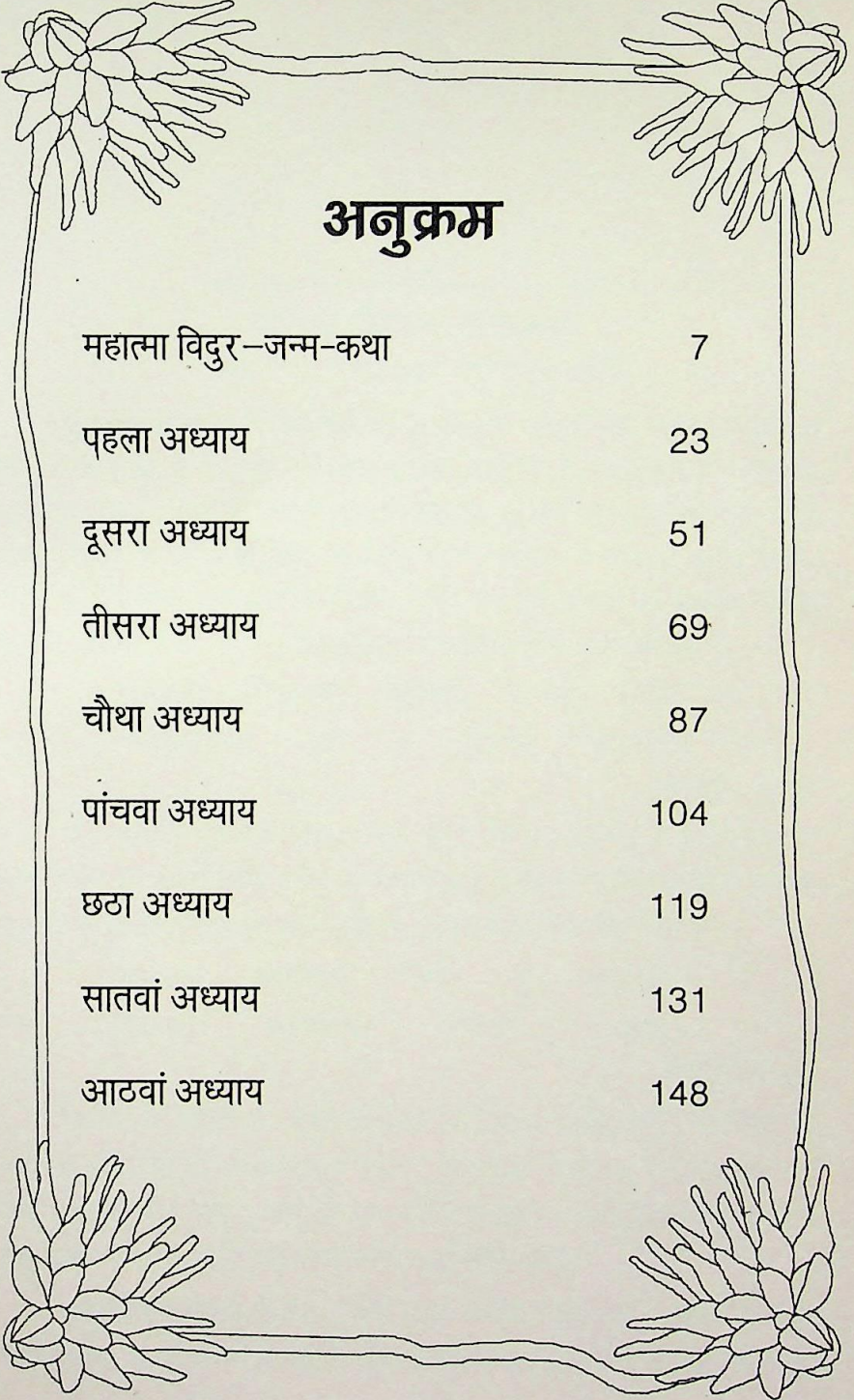
धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च पुरुषर्षभ।

यदिहास्ति तदन्यत्र यत्रेहास्ति न तत्त्वचित्।

अर्थात् पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) के विषय में हे भरत श्रेष्ठ! जो इस ग्रंथ में है, वह दूसरे ग्रंथों में भी है लेकिन जो इसमें नहीं है, वह अन्यत्र होना भी संभव नहीं है।

आज जब सर्वत्र भ्रष्टाचार अपना साम्राज्य विकसित कर चुका है, मानव मात्र काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि से ग्रस्त है, तब यह पुस्तक श्रेष्ठ गुरु की भांति मनुष्य को सुख-शान्ति एवं उन्नति की ओर ले जा सकती है। मुझे आशा है कि सुधी पाठक इसका अध्ययन कर लाभान्वित होंगे।

विदुषामनुचरः
सत्यवीर शास्त्री



अनुक्रम

महात्मा विदुर-जन्म-कथा	7
पहला अध्याय	23
दूसरा अध्याय	51
तीसरा अध्याय	69
चौथा अध्याय	87
पांचवा अध्याय	104
छठा अध्याय	119
सातवां अध्याय	131
आठवां अध्याय	148

महात्मा विदुर—जन्म-कथा

कुरुश्रेष्ठ महाराजा विचित्रवीर्य की अम्बा और अम्बालिका नामक दो रानियां थीं। युवावस्था में महाराज विचित्रवीर्य का क्षयरोग से देहावसान हो गया तो राजसिंहासन पुनः सूना हो गया। महाराज शान्तनु की वंश-परम्परा आगे कैसे बढ़ाई जाये, राजमाता सत्यवती और महाबाहू भीष्म आपस में परामर्श करने लगे। भीष्मजी ने राजमाता से कहा कि नियोग विधि से दोनों रानियों को सन्तान उत्पत्ति कराना धर्मयुक्त है क्योंकि मनुजी ने स्त्रियों के आपद् धर्म के प्रसंग में कहा है—

विधवायां नियुक्तस्तु घृताक्तो वाग्यतो निशि।

एकमुत्पादयेत् पुत्रं न द्वितीयं कथञ्चन।

(मनुस्मृति 9/61)

पति पक्ष के गुरुजनों द्वारा नियुक्त पुरुष विधवा स्त्री के साथ सहवास के लिए अपने देह पर घी लगा (सौन्दर्य बिगाड़कर) वाणी को संयत कर रात्रि में एक पुत्र की उत्पत्ति हेतु सहवास करे, दूसरे के लिए प्रयत्न कभी भी न करे।

विधवायां नियोगार्थे निवृत्ते तु ग्रथाविधि।

गुरुवच्च स्तुयावच्च वर्तेयातां परस्परम्॥।

(मनुस्मृति 9/62)

विधवा में नियोग के लिए कामवश न होकर कर्तव्य बुद्धि से चित्त को संयमित और इन्द्रियों को अनासक्त रखकर नियोग का प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर दोनों परस्पर पिता और पुत्रवधु के समान वर्ते (समझें)। (कलिकाल में मनुष्यों में कामुकता एवं असंयमिता बढ़ जाने के कारण नियोग वर्जित है।)

राजमाता सत्यवती ने जब भीष्मजी को ही नियोगार्थ नियुक्त करने के लिए प्रयास किया तो भीष्मजी ने अपनी प्रतिज्ञा बतलाकर इस कार्य के लिए स्वयं को

असमर्थ बतलाया। तब महारानी सत्यवती लज्जा एवं संकोच सहित बोली—‘हे भीष्म! मैं तुम पर सर्वाधिक विश्वास रखती हूँ, इस आपद् धर्म के अवसर पर तुम्हें मैं वह गोपनीय रहस्य बतलाती हूँ जो किसी को भी विदित नहीं है। इस समय एकमेव तुम्हीं कुल में मूर्तिमान् धर्म हो, सत्य हो और परमगति हो। मैं तुम्हें जो सच्ची घटना बतलाने जा रही हूँ, उसे सुनकर जो कर्तव्य बने, उसे करो। हे भरतश्रेष्ठ! महाराज वसु का नाम तुमने अवश्य सुना होगा। मैं उन्हीं के वीर्य से, जो कि एक मछली द्वारा धारण किया गया था, एक धर्मपरायण मल्लाह द्वारा उस मछली के उदर से बाहर निकालकर पुत्रीवत् पाली-पोसी गयी हूँ। मेरे उन धर्मपिता के पास एक नौका थी, जो धर्मार्थ चलाई जाती थी। एक दिन मैं उसी नाव पर सवार थी, नवयौवना हो चुकी थी, नदी से पार जाने की इच्छा से महर्षि पराशर मेरे पास आये और मुझे देख कामपीड़ित हो, मुझसे मधुर वाणी में बोले—‘हे सुन्दरि! तुम कौन हो?’ मैंने उत्तर दिया—‘भगवन् ! मैं तो निषाद की पुत्री हूँ।’



महर्षि ने मुझे दुर्लभ वर का प्रलोभन दिया। एक ओर तो मैं पिता से डरती थी तथा दूसरी ओर मुनि के शाप के भय से मैं उनका अनुरोध टाल न सकी। महर्षि ने मेरी इच्छा न होने पर भी अपने तपोबल से कोहरा उत्पन्न कर मुझ अबला को अपने तेज से तिरस्कृत कर मुझे गर्भवती बनाया। पहले मेरे शरीर से मछली की बड़ी तीव्र दुर्गंध आती थी, मुनि ने उसे भी समाप्त कर कहा—‘हे सुन्दरि! मेरे द्वारा स्थापित इस गर्भ को त्याग कर तुम पुनः कन्या हो जाओगी।’ उसी गर्भ से महर्षि पराशर के पुत्र महान् योगी महर्षि व्यास का जन्म हुआ।

मेरे और तुम्हारे आग्रह करने पर वे अनुपम तेजस्वी व्यास इस कुल की परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए सुयोग्य सन्तान उत्पन्न करेंगे। महर्षि व्यास ने जाते समय मुझसे कहा था—‘हे माता! संकट के समय जब तुम मुझे याद करोगी तो मैं उपस्थित हो जाऊंगा।’

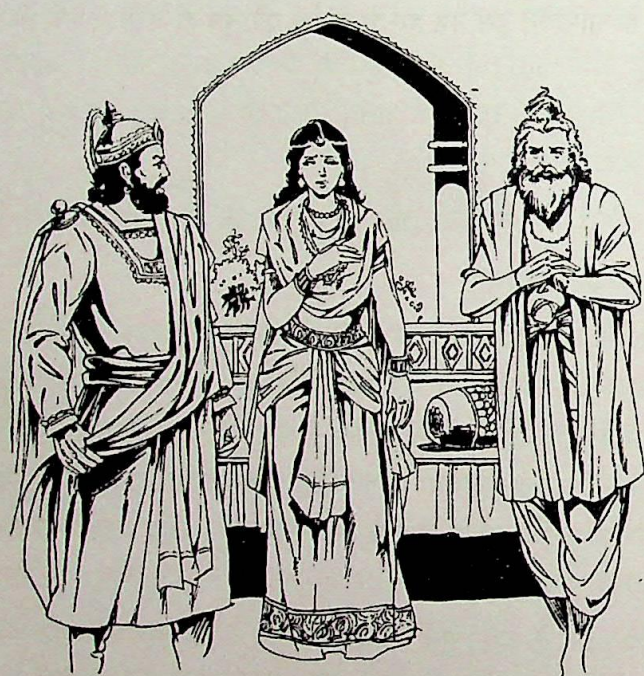
इस प्रकार रानी सत्यवती और भीष्म ने महर्षि व्यास का आवाहन किया।

महर्षि व्यास का आगमन

माता के आवाहन करने पर कृष्ण द्वैपायन महर्षि व्यास तत्काल प्रकट हो गये। सत्यवती ने अपने पुत्र का सत्कार किया। अपने पुत्र को दीर्घकाल के पश्चात् देखने के कारण उनकी आंखों से आनन्द के आंसू बहने लगे। महर्षि व्यास बोले—“धर्म को तत्त्वतः जाननेवाली माता! आपकी जो हार्दिक इच्छा हो, उसके अनुरूप कार्य करने के लिए मैं यहां आया हूं। आप आज्ञा दें। मैं आपकी क्या सेवा करूं?”

महर्षि व्यास के वचन सुन सत्यवती बोली—“जैसे तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो वैसे ही विचित्रवीर्य मेरा छोटा पुत्र था। माता-पिता दोनों का सन्तान पर समान अधिकार होता है। यह शान्तनुनन्दन भीष्म भी इसी प्रकार मेरा पुत्र है, इस नाते तुम तीनों परस्पर भाई हुए। हे अनघ! सन्तानोत्पादन और राज्य-शासन न करने का भीष्म ने प्रण ले रखा है। अतः तुम अपने भाई के पारलौकिक हित का विचार कर कुल की सन्तान-परम्परा की रक्षा करो। तुम्हारे छोटे भाई की पत्नियां देवकन्याओं के समान सुन्दर और यौवनसम्पन्न हैं तथा मन में धर्मतः पुत्र पाने की इच्छा करती हैं। पुत्र! तुम इस कार्य के लिए समर्थ हो अतः उन दोनों के गर्भ से ऐसे पुत्र को जन्म दो जो इस कुल की परम्परा की रक्षा तथा वृद्धि करने में सक्षम हो।”

ऐसा सुनकर महर्षि बोले—“हे माता! आप पर और अपर दोनों प्रकार के धर्मों को जानती हैं। आप की बुद्धि सदैव धर्म में ही लगी रहती है। अतः मैं आपकी आज्ञा से धर्म को ही दृष्टि में रखकर अर्थात् काम के वशीभूत न होकर आपकी इच्छानुसार कार्य करूंगा। मैं अपने भाई के लिए मित्र और वरुण के समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न करूंगा। भाई विचित्रवीर्य की पत्नियों को मेरे बतलाये अनुसार एक वर्ष तक जितेन्द्रिय होकर सन्तानार्थ साधन करना होगा। जिस स्त्री ने व्रत का पालन नहीं किया हो, वह मेरे समीप नहीं आ सकती।”



रानी सत्यवती ने कहा—“बेटा! ऐसा उपाय करो जिससे यह दोनों रानियां शीघ्र गर्भ धारण करें क्योंकि राज्य में इस समय कोई राजा नहीं है, महर्षि! तुम स्वयं विचार करो कि बिना राजा के राज्य कैसे सुरक्षित और अनुशासित रह सकता है! इसलिए जितनी शीघ्रता से गर्भाधान संभव हो सके, करो। बच्चों को भीष्म पाल-पोस कर बड़ा कर लेंगे।”

महर्षि बोले—“मां! यदि समय का नियम न रखकर शीघ्र ही अपने भाई के लिए पुत्र प्रदान करना है तो उन देवियों के लिए यह आवश्यक है कि मेरे असुन्दर रूप को देखकर डरें नहीं। यदि अम्बिका मेरे वेष, रूप, गन्ध और देह

को सहन कर ले तो ऋतुस्नान के पश्चात् उत्तम बालक को अपने गर्भ में पा सकती है। शुद्ध वस्त्र और शृंगार धारण कर शैया पर प्रतीक्षा करे।” ऐसा कहकर महर्षि व्यास अन्तर्धान हो गये।

महा तेजस्वी व्यासजी के चले जाने पर देवी सत्यवती ने अपनी पुत्रवधू अम्बिका को एकान्त में धर्म और अर्थ से युक्त हितकर वचन कहा—“मेरे भाग्य का नाश हो जाने से अब भरत वंश का उच्छेद भी होने जा रहा है, इसे देख भीष्म ने मुझे एक सम्मति दी है, बेटी। उस सम्मति की सार्थकता तुम पर निर्भर करती है। हे अम्बिके! इस नष्ट हुए भरतवंश को तुम ही बचा सकती हो।”

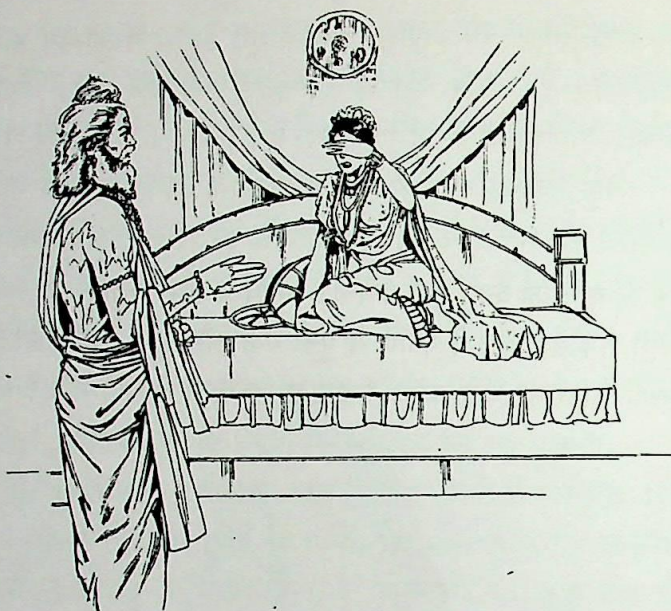
अम्बिका धर्म का आचरण करनेवाली थी लेकिन आपद् धर्म को सामने देख बड़ी कठिनता से उसने सास की बात मान ली। ठीक समय आने पर ऋतुस्नाता अम्बिका को सजा-संवार कर शय्या पर बिठा सत्यवती बोली— “हे अम्बिके! मेरे एक पुत्र, जो कि तुम्हारे देवर हैं, आवेंगे। तुम सावधान होकर प्रतीक्षा करो।”

सास की बात सुन अम्बिका पवित्र शैया पर शयन कर मन-ही-मन भीष्म और अन्य श्रेष्ठ कुरुवंशियों का स्मरण करने लगी।

उसी समय नियोगार्थ महर्षि व्यास ने कक्ष में प्रवेश किया। उन्होंने अपनी सांवली देह पर घी लगा रखा था जिसके कारण उनका रूप कुत्सित हो गया था। महर्षि के ऐसे स्वरूप को देख रानी ने भय के कारण अपने नेत्र मूंद लिये। माता का प्रिय करने की इच्छा से महर्षि ने यह सब किया लेकिन भय के कारण काशिराज की पुत्री ने उन्हें भलीभांति नहीं देखा।

जब महर्षि व्यास अम्बिका के कक्ष से बाहर निकले तो सत्यवती ने पूछा कि क्या अम्बिका के गर्भ से गुणवान् पुत्र उत्पन्न होगा? व्यासजी बोले—“मां! जो बच्चा जन्म लेगा, वह निःसंदेह दशसहस्र हाथियों के समान बलवाला, विद्वान्, राजर्षियों में श्रेष्ठ और परम सौभाग्यशाली होगा। वह सौ पुत्रों का जनक होगा, लेकिन माता के दोष के कारण जन्मांध होगा।”

महर्षि की बात सुनकर सत्यवती बोली—“तपोधन! कुरुवंश का राजा अन्धा हो, यह तो उचित नहीं। आप कुरुवंश के लिए दूसरा राजा दो, जो जाति-भाइयों और समस्त कुल का संरक्षक तथा पिता के वंश को बढ़ाने वाला हो।”



माता की बात सुन तथास्तु कह महर्षि अन्तर्धान हो गए। प्रसव का समय आने पर अम्बिका ने एक अन्धे पुत्र को जन्म दिया। सत्यवती ने इसी प्रकार दूसरी पुत्रवधू अम्बालिका को तैयार किया और महर्षि व्यास का आवाहन किया। महर्षि



व्यास नियोगार्थ जब रानी के महल में गये तो उनके कुत्सित स्वरूप को देखकर अम्बालिका भय के कारण पाण्डुवर्ण की हो गई। ऐसा देख महर्षि बोले—“अम्बालिके! तुम मुझे विरूप देख पाण्डुवर्ण की हो गई हो इसलिए तुम्हारा पुत्र भी इसी वर्ण का होगा तथा संसार में ‘पाण्डु’ नाम से ही जाना जाएगा।”

अम्बालिका के शयन-कक्ष से जब महर्षि बाहर आए तो सत्यवती ने पूछा कि अम्बालिका कैसा पुत्र जन्मेगी? महर्षि ने सारा वृत्तान्त माता को बतला दिया, जिसे सुन सत्यवती ने महर्षि से पुनः एक और पुत्र देने की याचना की। महर्षि तथास्तु कहकर चले गये। राजमाता सत्यवती ने पुनः कुरुवंश की दुहाई देकर अम्बिका को समझाया तथा तैयार रहने को कहा। समय आने पर महर्षि का आवाहन किया। अम्बिका महर्षि के स्वरूप से घृणा करती थी अतः उसने अपनी एक दासी को अपना शृंगार करवाकर तैयार किया तथा अपनी शय्या पर उसे सुला दिया। महर्षि के आने पर दासी ने उनका प्रसन्न हृदय से स्वागत किया। दासी के व्यवहार से महर्षि अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—“हे शुभ्रे! अब तू दासी नहीं रहेगी। तेरे उदर में एक महान् तेजस्वी बालक आया है। वह लोक में धर्मात्मा और समस्त बुद्धिमानों में श्रेष्ठ होगा।” इतना कह महर्षि अम्बिका के कक्ष से बाहर निकले।



धर्मराज का ही अवतार थे महात्मा विदुर

देवी सत्यवती ने जब महर्षि से आने वाले शिशु के विषय में पूछा तो महर्षि बोले—“माता! अश्विका ने आपकी आज्ञा न मानकर अपनी जगह अपनी दासी को भेजा था, फलतः दासी के गर्भ से साक्षात् धर्मराज शिशु के रूप में जन्म लेंगे। इस प्रकार महर्षि अणी माण्डव्य के शाप का भी पालन हो जायेगा।”

सत्यवती बोली—“हे अनघ! पुण्यवादी धर्मराज ने ऐसा क्या अपराध किया था कि उन्हें दासी (शूद्रा) के गर्भ से मनुष्य योनि में जन्म लेना पड़ा।”

मुनि व्यासजी बोले—“माता! पूर्व काल में माण्डव्य नाम के एक ऋषि हुए हैं। एक समय महर्षि माण्डव्य घोर तपस्या में लीन थे। कुछ चोर एक राजा के धन को चुराकर ले जा रहे थे। उन्हें पकड़ने को उनके पीछे सैनिक लगें थे। सैनिकों के डर से उन लुटेरों ने धन को महर्षि के निकट रख दिया और सभी आश्रम में जाकर छिप गए। जब सैनिक महर्षि के आश्रम पर पहुंचे तो धन को महर्षि के पास रखा देखा। सैनिक महर्षि से बोले—हे तपोधन! हमें बतलाइए कि चोर किस ओर भागे हैं ताकि हम उसी रास्ते जाकर उन्हें पकड़ सकें, लेकिन तप में लीन माण्डव्य ऋषि ने उन सैनिकों की बात नहीं सुनी। आश्रम में छिपे वे चोर भी पकड़े गये, जिसके कारण सैनिकों ने ऋषि को भी चोरों का साथी समझा और सभी को बांधकर राजा के पास ले गये तथा राजा को सारा वृत्तान्त सविस्तार बतलाया। राजा ने बिना विचार किये, उन चोरों के साथ ही महर्षि को भी प्राणदण्ड की आज्ञा दे दी। रक्षकों ने भी उन महातपस्वी ऋषि को नहीं पहचाना तथा चोरों के साथ उन्हें भी शूली पर चढ़ा दिया।

धर्मात्मा महर्षि माण्डव्य दीर्घ काल तक उस शूल के अग्रभाग पर बैठे रह तपस्या में लीन रहे, भोजन न मिलने की स्थिति में भी वे जीवित रहे और स्मरणमात्र करके ऋषियों को अपने पास बुलाने लगे। शूली की नोक पर तपस्या करनेवाले उन महात्मा से प्रभावित सभी ऋषियों-मुनियों को बड़ा सन्ताप हुआ। वे रात में पक्षियों का रूप धारण कर उड़ते हुए आये और अपनी शक्ति के अनुसार स्वरूप को प्रकाशित करते हुए माण्डव्य मुनि से पूछने लगे—“हे ब्राह्मण! हम यह जानने को उत्सुक हैं कि आपको कौन से पाप का यह दण्ड मिला है?” तब

माण्डव्य मुनि ने उन तपस्वियों से कहा—“मैं किसे दोष दूं, किसी दूसरे ने मेरा अपराध नहीं किया है।” इधर सैनिकों ने भी मुनि को शूली पर जीवित देखा तो यह समाचार राजा को दिया।

सैनिकों की बात सुनकर राजा ने अपने मन्त्रियों से मन्त्रणा की तथा मुनिश्रेष्ठ को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। राजा महर्षि माण्डव्य के समीप जा विनयपूर्वक बोले—“मुनिवर! मोह किंवा अज्ञानवश मैंने जो अपराध किया है, उसके लिए आप मुझ पर क्रोधित न हों। मैं आप से यही प्रार्थना करता हूं।” राजा की प्रार्थना से मुनि उन पर प्रसन्न हुए। तब राजा ने महर्षि को शूली से उतारने की आज्ञा दी। नीचे उतारकर महर्षि के शरीर से शूल निकालने के लिए खींचा। जब शूल नहीं खींच सके तो शूल को मूल भाग में काट दिया और महर्षि उस शूल को देह में लिये ही संसार में विचरने लगे। शूल के अग्रभाग को अणि कहते हैं, महर्षि माण्डव्य के देह में अणि रह जाने से वे अणि माण्डव्य कहे जाने लगे।

एक बार महर्षि माण्डव्य धर्मराज के दरबार में गए धर्मराज को दिव्यासन पर बैठे देखा। उस समय महर्षि ने उन्हें उलाहना देते हुए पूछा—“मैंने जाने-अनजाने ऐसा कौन-सा पाप किया था जिसके कारण उसके फल का भोग मुझे इस रूप में मिला।”

धर्मराज बोले—“तपोधन! तुमने एक पतंगे के पृष्ठभाग में सींक घुसेड़ दी थी, यह उसी का फल है। महर्षि! जैसे थोड़ा दिया दान कई गुणा शुभ फल देता है, ऐसे ही थोड़ा किया गया पाप बहुत दुःख देनेवाला होता है।”

महर्षि ने पूछा—“मैंने किस आयु में यह पाप किया था?”

धर्मराज ने उत्तर दिया—“बाल्यकाल में।”

अणि माण्डव्य बोले—“धर्मशास्त्र के अनुसार जन्म से लेकर बारह वर्ष की आयु तक बालक जो कुछ करता है, उसे अधर्म नहीं कहा जा सकता क्योंकि धर्मदिश को बालक समझता नहीं। तुमने एक छोटे से अपराध की इतनी बड़ी सजा दी। हे धर्मराज! मैं तुम्हें शाप देता हूं कि तुम मनुष्य होकर शूद्रयोनि में जन्म लोगे। आज से संसार में मैं धर्म के फल को प्रकट करनेवाली मर्यादा स्थापित करता हूं। बाल्यकाल में किये अपराध का दोष जीव को नहीं लगेगा।”

महर्षि माण्डव्य के शाप के कारण साक्षात् धर्मराज ही विदुर रूप में शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए। महात्मा विदुर धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के पण्डित, लोभ और क्रोध से रहित, दीर्घदर्शी, शान्तिपरायण तथा कुरुवों के हित में सदैव तत्पर रहते थे। इस प्रकार धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर—इन तीनों कुमारों के जन्म से कुरुवंश की उन्नति हुई।

सबका कल्याण चाहने वाले थे विदुर

महात्मा विदुर ने अपने जीवन में कभी पक्षपात नहीं किया। वे सभी के धर्म और कल्याण की बातें ही सोचते और करते थे, क्योंकि वह धर्मराज का ही अवतार थे, इसलिए सदैव ही न्यायसम्मत बात करते थे। वे जैसी सलाह पांडवों को देते थे, वैसी ही कल्याणकारी सलाह कौरवों को भी दिया करते थे। यह अलग बात थी कि जहां पांडव उनका मान-आदर करते थे, उनकी हर सलाह को शिरोधार्य करते थे, वहीं कौरव उनकी बात को सुनकर भी अनसुनी कर देते थे।

जहां पांडव धार्मिक कृत्यों में विश्वास करते थे, वहीं कौरव अधर्म के कार्यों की ओर प्रवृत्त रहते थे, ऐसे में विदुर उनसे स्पष्ट कहते थे—‘यह अधर्म है, इसे न करो।’ लेकिन कौरवों ने कभी उनकी बात को शिरोधार्य नहीं किया। दरअसल, कौरवों को यह भ्रम था कि विदुर सदैव पांडवों के पक्ष की और उनके लाभ की ही



बात सोचते हैं, जबकि ऐसा कुछ भी नहीं था। विदुर कौरवों और पांडवों को बराबर समझते थे। समान परामर्श देते थे।

यह तो सर्व विदित है कि कौरव पांडवों से बैर रखते थे। इतना अधिक बैर कि सदैव ही उन्हें जान से मारने के लिए षड्यंत्र रचते रहते थे। विदुर ज्ञानवान् तो थे ही, नीतिज्ञ भी ऐसे थे कि कभी उन्होंने कौरवों और पांडवों का टकराव नहीं होने दिया। वह बीच का रास्ता निकालकर, धैर्य बंधाने की नीति से मामले को शांत कर दिया करते थे। महाभारत में दुर्योधन के पांडवों के प्रति जानलेवा प्रयासों का कई स्थान पर जिक्र आया है।

ऐसे ही दुर्योधन के एक प्रपंच का जिक्र हम यहां करते हैं, जब उसने छल से भीम को अपनी ओर से मौत के घाट उतार ही दिया था। यदि उस मौके पर विदुर न होते तो इस चर्चित महाभारत से पहले ही एक लघु महाभारत कौरवों और पांडवों के बीच हो चुका होता, क्योंकि भीम भी कुछ कम क्रोधी प्रवृत्ति के नहीं थे।

जब दुर्योधन के बार-बार प्रपंच रचने पर भी वह पांडवों का कोई अहित न कर सका तो एक बार उसने एक नई चाल चली। उसने पांडवों को जल-विहार के लिए आमंत्रित किया। दुर्योधन ने अपने पांडव भाइयों के प्रति बड़ा प्रेम और आदर प्रकट किया तथा मौका देखकर भीम को विषयुक्त मिठाई खिला दी। मिठाई खाकर जब भीम बेहोश हो गया तो दुर्योधन ने उसे रस्सियों से बंधवाकर गंगा नदी में फेंकवा दिया।



यह कृत्य करके दुर्योधन व दुःशासन वापस उसी स्थान पर आ गए, जहां युधिष्ठिर आदि जल-विहार का आनंद ले रहे थे। कुछ समय बाद सूर्यास्त होने लगा तो सभी वापस चल दिए। अपने बीच भीम को न पाकर पांडुपुत्रों ने सोचा कि शायद वह पहले ही चला गया हो। किंतु जब वह कुंती के पास आए और वहां भी भीम को न पाया तो युधिष्ठिर ने कहा कि हम तो समझ रहे थे कि भीम हमें बिना बताए उकताकर महलों को लौट आया होगा, किंतु अब लगता है कि उसके साथ अवश्य ही कोई अनहोनी हो गई है। यह सुनकर कुंती भी चिंचित हो उठी और उसने तुरंत विदुर को बुलाकर सारी बात बताते हुए अपनी आशंका जताई—‘देवरजी! यह सभी भाई दुर्योधन के आग्रह पर जल-विहार के लिए गए थे, किंतु सब तो लौट आए, मगर भीम नहीं आया। मुझे बड़ी चिंता हो रही है और दुर्योधन पर संदेह होता है कि कहीं उस दुष्ट ने उसका कुछ अहित न कर दिया हो।’

“भाभी” विदुर बोले—“बिना किसी प्रमाण के दुर्योधन पर लांछन लगाना ठीक नहीं है। इस प्रकार वह कुछ और भी अनिष्ट करने की चेष्टा कर सकता है। और जहां तक भीम का सवाल है, उसकी तुम्हें चिंता नहीं करनी चाहिए। महामुनि व्यास के आशीर्वाद से तुम्हारे सभी पुत्र चिरंजीवी हैं। दुर्योधन तो क्या कोई भी उनका अहित नहीं कर सकता। विश्वास रखो, भीम जहां भी होगा, शीघ्र ही लौट आएगा। और हां, यह बात किसी पर प्रकट नहीं होनी चाहिए कि दुर्योधन ने भीम के साथ कोई छल किया है, इसी में पांडवों की भलाई है। अपमानित और असफल होकर दुर्योधन कोई और भी भयानक कदम उठा सकता है।”

विदुर के धैर्य बंधाने पर कुंती की घबराहट समाप्त हो गई और कुछ समय बाद जैसा कि विदुर ने कहा था, भीम नागलोक से पारे का रस पीकर और दस हजार हाथियों के समान बली होकर वापस लौट आया। कुंती और युधिष्ठिर ने भीम के मुख से दुर्योधन की धृष्टता का सब हाल सुनकर भी उसे समझाया कि विदुर चाहते हैं कि यह बात किसी पर उजागर न हो, इसी में हम सबकी भलाई है। इस प्रकार पांडव दुर्योधन की इस धृष्टता को खून के घूंट की तरह पी गए। यह विदुर की सत्-शिक्षा ही थी कि इतना बड़ा कांड होने पर भी कोई विवाद उत्पन्न नहीं हुआ।

इसी प्रकार लाक्षागृह का प्रकरण किसी से छिपा नहीं है। यह विदुरजी की नीति का ही चमत्कार था कि पांडव लाक्षागृह से साफ बच निकले और दुर्योधन इसी भ्रम में जीता रहा कि उसने पांडवों को समाप्त कर दिया है।

बाद में जब द्रौपदी स्वयंवर के समय पांडव प्रकट हुए तब दुर्योधन बड़ा तिलमिलाया। वह युद्ध को तत्पर हो गया। कर्ण ने इस अवसर पर आग में घी का काम किया। यहां यह कहना भी असंगत नहीं होगा कि धृतराष्ट्र दो प्रकार से अंधे थे। एक तो वे शारीरिक तौर पर जन्मजात अंधे थे, दूसरे आत्मिक तौर पर पुत्र-मोह में अंधे हो रहे थे। दुर्योधन ने जब अपनी युद्ध करने की मंशा उनके सामने रखी, तो वह प्रबलता से विरोध न कर सके। तब उन्होंने भीष्म पितामह, आचार्य द्रोण और विदुर को बुलाया। जब धृतराष्ट्र ने उन्हें दुर्योधन की मंशा बताई तो भीष्म और द्रोण ने स्पष्ट इनकार करते हुए कहा—“हमारी नजर में कौरव और पांडव दोनों ही बराबर हैं। हमारे लिए दोनों ही प्रिय हैं, इसलिए हम युद्ध का अनुमोदन नहीं करेंगे।”

हालांकि वह भली-भांति जानते थे कि उनके इनकार या स्वीकार करने से कुछ नहीं होगा। होना वही है जो महाराज धृतराष्ट्र चाहेंगे और महाराज धृतराष्ट्र में पुत्र-मोह के कारण इतनी शक्ति नहीं थी कि वह दुर्योधन की बात को अस्वीकार कर दें। किंतु यह विदुर ही थे जिन्होंने धृतराष्ट्र को ज्ञान और नीति का ऐसा उपदेश दिया कि युद्ध होते-होते टल गया। महात्मा विदुर ने बड़ी निर्भीकता से कहा—“महाराज! भीष्म और द्रोणजी ठीक कहते हैं। युद्ध करना व्यर्थ है। बहुत-सी बातें ऐसी हैं जिन्हें अब सुनना नहीं चाहते और कहनेवाले चाहकर भी कह नहीं पाते। भीष्म और द्रोण आपके हितैषी हैं और आपके हित की बात कर रहे हैं। आखिर युद्ध का कोई कारण होता है। युद्ध किसलिए? क्या ले लिया पांडवों ने कौरवों का, जो दुर्योधन युद्ध को आतुर है? एक बात स्पष्ट तौर पर समझ लीजिए महाराज कि पांडवों को परास्त करने की शक्ति किसी में भी नहीं है। उनके साथ धर्म है। वे सत्य के पथ पर चलनेवाले हैं। और जो सत्य के मार्ग पर चलते हैं, संसार का बली-से-बली देव भी उनका बाल बांका नहीं कर सकता। क्या आप नहीं जानते कि श्री कृष्ण, बलराम और सात्यकि जैसे पराक्रमी उनके पक्ष में हैं। अनेकानेक राजाओं और राजकुमारों के वह प्रेमी हैं और वे सभी उनके हितचिंतक हैं। आपको यह बात भी नहीं भूलनी

चाहिए कि वह इस राज्य के आधे भाग के अधिकारी हैं। राज्य में उनका आधा हिस्सा है। सारी प्रजा भी इस बात को जानती है। और जब से प्रजा को यह मालूम हुआ है कि लाक्षागृह कांड के बाद भी पांडव जीवित हैं, तबसे सारी प्रजा उन्हें देखने को व्याकुल है। उन्हें लाक्षागृह में जीवित जला देने की चेष्टा की गई थी, यह बात अब किसी से छिपी नहीं रह गई है। इस अवसर पर उनको सम्मान सहित वापस बुलाकर और आधा राज्य देकर आप इस कलंक को धो सकते हैं। इससे आप का लाभ ही लाभ है। इससे न केवल द्रुपद आपके पक्ष में हो जाएंगे बल्कि श्रीकृष्ण से भी आपकी घनिष्ठता हो जाएगी और यदुवंशी आपकी आज्ञा का पालन करेंगे। आपको यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए कि श्रीकृष्ण कोई साधारण मनुष्य नहीं बल्कि साक्षात् भगवान श्री हरि हैं, वे जिस पक्ष में रहेंगे, जीत उसी की होगी। आपसे निवेदन है कि दुर्योधन, कर्ण और शकुनि आदि की बातों में न आकर अपने विवेक से काम लें अन्यथा यह निश्चित जानिए कि आपके पुत्रों का, प्रजा का और कुल का नाश होते देर नहीं लगेगी।”

धृतराष्ट्र ने विदुर की स्पष्ट बातें सुनकर तुरंत उन्हें न केवल ग्रहण किया बल्कि विदुर से ही पांडवों व द्रौपदी को आदर सहित लाने का अनुरोध भी किया।



तब महात्मा विदुर स्वयं पांचाल में जाकर पहले राजा द्रुपद से मिले। राजा द्रुपद ने उनका हार्दिक आदर-सत्कार किया। विदुरजी की हार्दिक इच्छा थी कि वे श्रीकृष्ण के दर्शन करें। द्रुपद के आदर-सत्कार के बाद वे श्रीकृष्ण के पास गए और उनके दर्शन करके आत्मविभोर हो उठे। विदुर की कृष्ण दर्शन की चिर-अभिलाषा थी, अतः श्रीकृष्ण के सम्मुख जाते ही विदुर उनके चरणों में गिर पड़े। श्रीकृष्ण ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। इसके पश्चात् विदुरजी पांडुपुत्रों और कुंती से मिले और कुशलक्षेम पूछा।

दूसरे दिन राज्यसभा में उपस्थित होकर विदुर ने श्रीकृष्ण व पांडवों के समक्ष राजा द्रुपद से कहा—“महाराज! महाराज धृतराष्ट्र, वयोवृद्ध भीष्म, द्रोणाचार्य व सभी कौरवों की ओर से मैं आपका अभिवादन करता हूँ। आपके यहां कुरुवंश का संबंध होने से सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई है। अब हमारे राज्य के प्रजाजन पांडवों को देखने के लिए उतावले हो रहे हैं। जहां तक मेरा अनुमान है, पांडवपुत्र भी अपनी मातृभूमि देखने के लिए उत्कंठित हो रहे होंगे, क्योंकि इन्हें भी अपना देश छोड़े बहुत समय हो गया है। साथ ही कुरुकुल की स्त्रियां द्रौपदी को देखने के लिए भी लालायित हैं। अतः महाराज धृतराष्ट्र की ओर से मेरा निवेदन है कि पांडवों को द्रौपदी सहित विदा करें। आपकी अनुमति मिलते ही मैं वहां संदेश भेज दूंगा ताकि कुरुवंश की पुत्रवधू द्रौपदी का यथोचित स्वागत-सत्कार हो सके।”

“विदुरजी! आपकी बात जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।” राजा द्रुपद ने कहा—“पांडवों का अपने राज्य में जाना न केवल उचित है बल्कि आवश्यक भी है, किंतु मैं अपने मुख से जाने के लिए कैसे रह सकता हूँ। यह जितने दिनों तक मेरे यहां रहें, यह अच्छा ही है, तथापि कुंती, पांडव, श्रीकृष्ण व बलराम की सम्मति हो तो मुझे इनके जाने में कोई आपत्ति नहीं है।”

“हम तो आपके अधीन हैं महाराज!” धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—“आप जो आदेश देंगे, हमारे लिए शिरोधार्य होगा।”

श्रीकृष्ण ने कहा—“मेरे विचार से पांडवों को वहां चले जाना चाहिए।”

“परम शक्तिशाली यदुवीर श्रीकृष्ण जो कहते हैं, वही ठीक है, क्योंकि उनकी पांडवों पर असीम कृपा है। जितने वे पांडवों के हितचिंतक हैं, उतना शायद मैं भी नहीं हूँ।”

और इस प्रकार पांडवों की विदाई का सर्वसम्मति से निर्णय हो गया।

श्रीकृष्ण, कुंती, पांडवों और कुलवधू द्रौपदी को लेकर विदुर वारणावत आ गए, जहां महाराज धृतराष्ट्र की ओर से उनका भव्य स्वागत किया गया। महाराज धृतराष्ट्र ने उन्हें खांडवप्रस्थ में राजधानी बनाकर रहने की आज्ञा भी दे दी और आधा राज्य भी दे दिया।

इस प्रकार महात्मा विदुर ने पांडवों को उनका अधिकार दिलाया। ऐसे थे महात्मा विदुर!

*

पहला अध्याय

सार संक्षेप

- ❑ पूर्व प्रसंग ।
- ❑ धृतराष्ट्र की आज्ञा से द्वारपाल का विदुरजी को बुलाकर उनके पास पहुंचाना ।
- ❑ विदुर का चिन्तामग्न धृतराष्ट्र से अपने बुलाने का कारण पूछना ।
- ❑ धृतराष्ट्र का विदुर को अपनी चिन्ता बताकर उनसे श्रेय का उपाय पूछना ।
- ❑ किन दोषों के कारण मनुष्य को चिन्ता और जागरण करने पड़ते हैं, यह बताकर विदुर का धृतराष्ट्र को युधिष्ठिर के प्रति किये गये अन्याय के लिए उलाहना देना ।
- ❑ पण्डित एवं पाण्डित्य का लक्षण ।
- ❑ मूढ़ की पहचान ।
- ❑ पण्डित किसे कहते हैं ।
- ❑ घर के लोगों को न बांटकर अकेले उत्तम अन्न वस्त्र का उपभोग करने की निन्दा ।
- ❑ कर्ता ही दोष का भागी है ।
- ❑ बुद्धि की प्रबलता और उसका सदुपयोग ।
- ❑ मन्त्र विप्लवं से हानि ।
- ❑ अकेला क्या-क्या न करे ।
- ❑ सत्य की प्रशंसा ।

- ┌ क्षमा की प्रशंसा ।
- ┌ धर्म, क्षमा, विद्या और अहिंसा की प्रशंसा ।
- ┌ पृथ्वी किन दो व्यक्तियों को खा जाती है ।
- ┌ कटु वचन न बोलने और दुष्टों का आदर न करने की प्रशंसा ।
- ┌ दूसरों के विश्वास पर चलनेवाले दो प्रकार के व्यक्ति दो कांटे ।
- ┌ किन दो व्यक्तियों की शोभा नहीं होती ।
- ┌ दो स्वर्ग से भी ऊंचे स्थान पानेवाले व्यक्ति ।
- ┌ धन के दो दुरुपयोग ।
- ┌ किन दो को पानी में डुबो देना चाहिए ।
- ┌ सूर्य मण्डल का भेदन करनेवाले दो पुरुष ।
- ┌ त्रिविध उपाय और पुरुष ।
- ┌ धन के तीन अनधिकारी ।
- ┌ तीन विनाशकारी दोष ।
- ┌ नरक के तीन द्वार ।
- ┌ शत्रु के संकट से छूटना, बल-प्राप्ति, राज्य-प्राप्ति और पुत्र-प्राप्ति—तीनों के बराबर है ।
- ┌ तीन प्रकार के शरणागतों का त्याग न करें ।
- ┌ राजा के द्वारा त्यागने योग्य चार प्रकार के मनुष्य ।
- ┌ घर में रहने योग्य चार प्रकार के मनुष्य ।
- ┌ तत्काल फल देनेवाली चार बातें ।
- ┌ भय को दूर करनेवाले चार कर्म ।
- ┌ सेवन करने योग्य पांच अग्नि ।
- ┌ पांच की पूजा से विशुद्ध यश की प्राप्ति ।
- ┌ राजा के पीछे लगे रहनेवाले पांच व्यक्ति ।
- ┌ पांच इन्द्रियों में से एक के भी दोषयुक्त होने से हानि ।
- ┌ त्याग देने योग्य छः दोष और छः प्रकार के व्यक्ति ।
- ┌ त्याग न करने योग्य छः गुण और जीवलोक के छः सुख ।
- ┌ काम-क्रोध आदि छः शत्रुओं को जीतने से लाभ ।
- ┌ छः प्रकार के लोगों के छः आश्रय ।

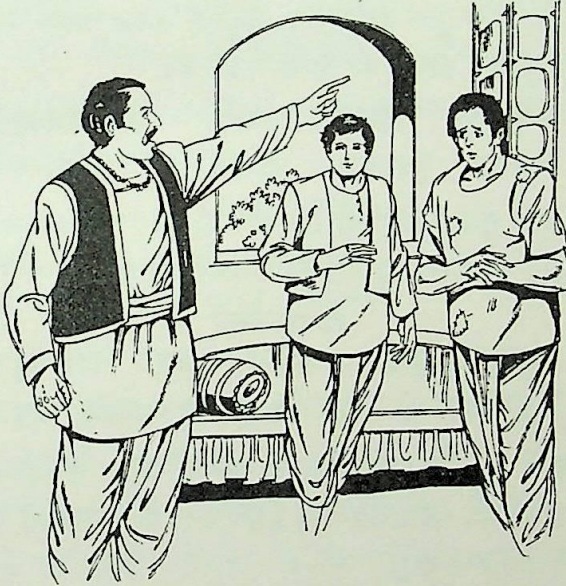
- ❑ स्वयं देख-रेख न करने से छः वस्तुओं का नाश ।
- ❑ छः प्रकार के व्यक्तियों द्वारा छः तरह के मनुष्यों की अवहेलना ।
- ❑ जीव लोक के छः सुख ।
- ❑ दुःख के भागी छः व्यक्ति ।
- ❑ राजा के त्यागने योग्य सात दोष ।
- ❑ नष्ट होनेवाले मनुष्य के आठ प्रकार के लक्षण ।
- ❑ हर्ष के सार और लौकिक सुख के साधन की आठ बातें ।
- ❑ पुरुषों को उद्दीप्त करनेवाले आठ गुण ।
- ❑ नौ दरवाजों के घर ।
- ❑ धर्म को न जाननेवाले दस प्रकार के मनुष्य ।
- ❑ प्रह्लाद का सुधन्वासहित अपने पुत्र विरोचन को उपदेश—सब लोग किसको प्रमाण मानते हैं तथा सम्पूर्ण राज-लक्ष्मी किसकी सेवा में चली जाती है ।
- ❑ भीरु पुरुष का लक्षण, किसके शत्रु परास्त हो जाते हैं, कौन सदा सुखी रहता है और किसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है ।
- ❑ लोग किसको प्यारा बना लेते हैं, सत्पुरुष किसे श्रेष्ठ स्वभाव का बताते हैं तथा कौन महान् जन-समुदाय पर अपनी प्रभुता स्थापित कर लेता है ।
- ❑ कौन प्रधान है, देवता किसके अभ्युदय की सिद्धि करते हैं, किस विद्वान् की नीति श्रेष्ठ है और अनर्थ किसको त्याग देते हैं ।
- ❑ किसका थोड़ा-सा भी काम बिगड़ने नहीं पाता, कौन अपनी जातिवालों में अधिक ख्यातिलाभ करता है और कौन सूर्य के समान शोभा पाता है ।
- ❑ विदुर का धृतराष्ट्र से पाण्डवों के गुण बताकर उन्हें आधा राज्य देने के लिए अनुरोध करना ।

प्रजागर पर्व

पूर्व प्रसंग : धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने संदेश के साथ संजय को महाराज धृतराष्ट्र के पास भेजा था। संदेश में ऐसा न जाने क्या था कि संजय ने उनके पास आकर उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाई और यह कहकर चला गया कि युधिष्ठिर का संदेश कल सभा में सुनाऊंगा। धृतराष्ट्र इसी चिंता में डूब गए कि कल न जाने सभा में संजय क्या कहनेवाला है। इसी चिंता के कारण उन्हें रात-भर नींद नहीं आई। इस प्रकरण को इसी कारण 'प्रजागर पर्व' कहा गया है। जिसका अर्थ है जागते हुए रात व्यतीत करना। धृतराष्ट्र भी सारी रात इसी चिंता में डूबे रहे। फिर जैसे ही सवेरा हुआ तो उन्होंने द्वारपाल को बुलाकर तुरंत विदुर को बुला लाने के लिए कहा। ऋषि वैशम्पायनजी इसी बात को जनमेजय (कुरुवंश के राजा परीक्षित के पुत्र, जिन्होंने नागयज्ञ किया था) के प्रति कह रहे हैं।

पहला अध्याय विस्तार से

परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा ।
यश्च कुड्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ॥



स्वयं दोषी होकर भी जो दूसरों पर दोषारोपण करता है तथा असमर्थ होकर भी व्यर्थ क्रोध करता है, वह मनुष्य महामूर्ख है ।

वैशम्पायन उवाच

द्वाःस्थं प्राह महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो महीपतिः ।
विदुरं द्रष्टुमिच्छामि तमिहानय माचिरम् ॥१॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—संजय के जाने के बाद महाबुद्धिमान् राजा धृतराष्ट्र ने द्वारपाल से कहा—मैं विदुर से मिलना चाहता हूं, उन्हें शीघ्र यहां बुला लाओ ।

प्रहितो धृतराष्ट्रेण दूतः क्षत्तारमब्रवीत् ।
ईश्वरस्त्वां महाराजो महाप्राज्ञं दिदृक्षति ॥२॥

धृतराष्ट्र का भेजा हुआ दूत महात्मा विदुर से जाकर बोला—महामते! हमारे स्वामी महाराज धृतराष्ट्र आपसे भेंट करना चाहते हैं ।

एवमुक्तस्तु विदुरः प्राप्य राजनिवेशनम् ।
अब्रवीद् धृतराष्ट्राय द्वाःस्थ मां प्रतिवेदय ॥३॥

दूत की बात सुनकर विदुरजी राजमहल की ओर चल दिये तथा वहां पहुंच द्वारपाल से बोले—महाराज धृतराष्ट्र को मेरे आने की सूचना दे दो ।

द्वाःस्थ उवाच

विदुरोऽयमनुप्राप्तो राजेन्द्र तव शासनात् ।
द्रष्टुमिच्छति ते पादौ किं करोतु प्रशाधि माम् ॥४॥

द्वारपाल ने जाकर कहा—महाराज! आपकी आज्ञा से महात्मा विदुर यहां आ पहुंचे हैं, वे आपके चरणारविन्द के दर्शन करने के अभिलाषी हैं । आप मुझे आज्ञा दें कि मैं उन्हें क्या कहूं?

धृतराष्ट्र उवाच

प्रवेशय महाप्राज्ञं विदुरं दीर्घदर्शिनम् ।
अहं हि विदुरस्यास्य नाकल्पो जातु दर्शने ॥५॥

धृतराष्ट्र बोले—महामते विदुर को आदर सहित भीतर ले आओ, मुझे उस दूरदर्शी और महाबुद्धिमान् से मिलने में कभी भी अड़चन नहीं है ।

द्वाःस्थ उवाच

प्रविशान्तःपुरं क्षत्तर्महाराजस्य धीमतः ।
न हि ते दर्शनेऽकल्पो जातु राजाऽब्रवीद्धि माम् ॥६॥

द्वारपाल ने विदुर के पास आकर कहा—विदुर जी! आप महाराज धृतराष्ट्र के अन्तःपुर में चले जाइए, महाराज ने मुझसे कहा है कि आप से मिलने में उन्हें कोई अड़चन नहीं है।

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रविश्य विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम् ।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं चिन्तयानं नराधिपम् ॥7॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—इसके पश्चात् महात्मा विदुर महाराज धृतराष्ट्र के महल में जाकर चिन्तामग्न राजा से हाथ जोड़कर बोले—

विदुरोऽहं महाप्राज्ञ सम्प्राप्तस्तव शासनात् ।
यदि किञ्चन कर्तव्यमयमस्मि प्रशाधि माम् ॥8॥

महाप्राज्ञ! मैं विदुर हूं, आपकी आज्ञानुसार मैं यहां उपस्थित हो गया हूं, मेरे करने योग्य जो कार्य हो सो आज्ञा करें।

धृतराष्ट्र उवाच

सञ्जयो विदुर प्राज्ञो गर्हयित्वा च मां गतः ।
अजातशत्रोः श्वो वाक्यं सभामध्ये स वक्ष्यति ॥9॥

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर! संजय आया था, मुझे भला-बुरा कहकर चला गया, कल राजसभा में वह अजातशत्रु युधिष्ठिर के वचन सुनाएगा।

तस्याद्य कुरुवीरस्य न विज्ञातं वचो मया ।
तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत् प्रजागरम् ॥10॥

आज मैं उस कुरुवीर युधिष्ठिर की बात नहीं जान सका, यही चिन्ता मेरे मन को कुण्ठित कर रही है और मैं अभी तक सो भी नहीं सका हूं।

जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदनुपश्यसि ।
तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥11॥

हे तात्! मैं चिन्ता से जलता हुआ जग रहा हूं। मेरे लिए जो कल्याण की बात हो, वह कहो, क्योंकि इस परिवार में एकमात्र तुम्हीं धर्म और अर्थ के ज्ञान में निपुण हो।

यतः प्राप्तः सञ्जयः पाण्डवेभ्यो न मे यथावन्मनसः प्रशान्तिः ।

सर्वेन्द्रियाण्यप्रकृतिं गतानि किं वक्ष्यतीत्येव मेऽद्य प्रचिन्ता ॥12॥

संजय जब से पांडवों के यहां से लौट कर आया है, तब से मेरे मन को शान्ति नहीं है, मेरी समस्त इन्द्रियां विकल हो रही हैं; कल संजय राजसभा में क्या कहेगा, इसी बात की बड़ी भारी चिन्ता मुझे है।

विदुर उवाच

अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम् ।
हतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः ॥13॥

विदुरजी बोले—जिस व्यक्ति का बलवान् के साथ विरोध हो जाये, जिस साधनविहीन मनुष्य का सब कुछ छीन लिया गया हो, जो काम-कुण्ठा से ग्रस्त हो, चोर हो, उसे रात में जागने का रोग लग जाता है।

कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप ।
कच्चिच्च परवित्तेषु गृध्यन् परितप्यसे ॥14॥

नेन्द्र! कहीं आपका भी इन महान् दोषों में से किसी एक के साथ सम्पर्क तो नहीं हो गया है? कहीं पराये धन के लोभ से तो आप पीड़ित नहीं हैं?

धृतराष्ट्र उवाच

श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं परं नैःश्रेयसं वचः ।
अस्मिन् राजर्षिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसम्मतः ॥15॥

धृतराष्ट्र बोले—हे महामते! मैं तुम्हारे कल्याणकारी तथा धर्मयुक्त वचनों को सुनने को आतुर हूं क्योंकि इस वंश में एकमात्र तुम्हीं नीतिनिपुण हो।

विदुर उवाच

राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्याधिपो भवेत् ।
प्रेष्यस्ते प्रेषितश्चैव धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः ॥16॥

विदुरजी बोले—महाराज! श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त राजा युधिष्ठिर तीनों लोकों के स्वामी हो सकते हैं। वे आप के आज्ञाकारी थे, परन्तु आपने उन्हें वन में भेज दिया।

विपरीततरश्च त्वं भागधेये न सम्मतः ।
अर्चिषां प्रक्षयाच्चैव धर्मात्मा धर्मकोविदः ॥17॥

आप धर्मात्मा और धर्म के जानकार होते हुए भी आंखों से अन्धे होने के कारण उन्हें पहचान नहीं सके, इसी कारण उनके कष्टर विरोधी बनकर उन्हें राज्य का भाग देने में आपने अपनी सहमति नहीं दी।

अनृशंस्यादनुक्रोशाद् धर्मात् सत्यात् पराक्रमात् ।

गुरुत्वात् त्वयि सम्प्रेक्ष्य बहून् क्लेशांस्तितिक्षते ॥18॥

महाराज युधिष्ठिर दया, धर्म, सत्य तथा पराक्रम के मूर्त रूप हैं। उनमें क्रूरता नहीं है, वे आपको अपना पूज्य मानते हैं। इसी कारण किंवा उपर्युक्त सद्गुणों के कारण वे सोच-विचार कर चुपचाप अनेक क्लेश सह रहे हैं।

दुर्योधने सौबले च कर्णे दुःशासने तथा ।

एतेष्वैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥19॥

मुझे बड़ा आश्चर्य है कि आप दुर्योधन, शकुनि, कर्ण तथा दुःशासन जैसे अयोग्य व्यक्तियों पर शासन का भार सौंपकर राज्य की ऐश्वर्य वृद्धि चाहते हैं।

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।

यमर्थात्रापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥20॥

जिस मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान, उद्योग, दुःख सहने की शक्ति और धर्म में आस्था रहती है, उसे कौन पुरुषार्थ से च्युत कर सकता है। वस्तुतः वही पण्डित कहलाने का अधिकारी है।

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।

अनास्तिकः श्रद्धाधान एतत् पण्डितलक्षणम् ॥21॥

जो मनुष्य बुरे कर्मों को त्याग कर अच्छे कर्मों का कर्ता होता है, जो आस्तिक है, श्रद्धालु है, उसके यही गुण उसे पण्डित बनाते हैं।

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च हीः स्तम्भो मान्यमानिता ।

यमर्थात्रापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥22॥

जिस मनुष्य को काम, क्रोध, हर्ष, गर्व, लज्जा, उद्वण्डता तथा स्वयं को पूज्य समझना जैसे भाव पुरुषार्थ से च्युत नहीं करते, वही पण्डित है।

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे ।

कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥23॥

दूसरे लोग जिसकी सलाह, कर्तव्य अथवा पहले से किये गये विचार को नहीं जान पाते बल्कि काम पूरा होने के पश्चात् जानते हैं, वही पण्डित है।

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः ।

समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते ॥24॥

जिस मनुष्य के कार्यों में सर्दी, गर्मी, भय, प्रीति, ऐश्वर्य अथवा दरिद्रता विघ्न नहीं डाल पाते, वही पण्डित है।

यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते ।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते ॥25॥

जो मनुष्य भोग को त्याग पुरुषार्थ का वरण करता है, जिसकी बुद्धि धर्म और अर्थ का ही अनुसरण करती है, वही पण्डित कहा जाता है।

यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वन्ते ।
न किञ्चिदमवन्त्यन्ते नराः पण्डितबुद्धयः ॥26॥

जो विवेकपूर्ण बुद्धिवाले पुरुष हैं वे अपनी सामर्थ्यानुसार कार्य करने की इच्छा रखते हैं और करते भी हैं तथा किसी वस्तु को तुच्छ समझ कर उसकी अवहेलना नहीं करते।

क्षिप्रं विजानाति चिरंशृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात् ।
नासम्पृष्टो व्युपयुङ्क्ते पदार्थे तत् प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥27॥

विद्वान् पुरुष किसी विषय को भले ही देर तक सुने मगर समझ शीघ्र ही लेता है, समझकर कर्तव्य बुद्धि से कार्य में लगता है, कामना से नहीं। बिना पूछे किसी के विषय में कोई टिप्पणी नहीं करता, यही पण्डित होने की पहचान है।

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम् ।
आप्तुं च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥28॥

जो मनुष्य पण्डितों जैसी बुद्धि रखता है, वह दुर्लभ वस्तु की कामना नहीं करता, खोई वस्तु के विषय में शोक नहीं करता तथा विपत्ति में कभी नहीं घबराता।

निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः ।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते ॥29॥

जो व्यक्ति समय को व्यर्थ नहीं गंवाता, सर्वप्रथम निश्चय करके ही कार्य आरम्भ करता है तथा कार्य को बीच में नहीं छोड़ता, वस्तुतः वही पण्डित कहा जाता है।

आर्यकर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वन्ते ।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ ॥30॥

भरत कुलभूषण ! जो पण्डित जन हैं वे श्रेष्ठ कर्मों में ही रुचि रखते हैं, उन्नति की ओर ही अग्रसर होते हैं तथा जो लोग भलाई का कार्य करते हैं, उनके दोष नहीं निकालते ।

न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते ।

गाङ्गो हृद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते ॥31॥

जो व्यक्ति अनादर होने पर संतप्त नहीं होता, आदर पाने पर गर्व से फूला नहीं समाता, गंगाजी के कुण्ड के समान जिसके चित्त को क्षोभ नहीं होता, वही पण्डित है ।

तत्त्वज्ञं सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम् ।

उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते ॥32॥

जो समस्त कार्यों को करने में कुशल है, तरीके जानता है, मनुष्यों में सबसे अधिक उपायों को जानता है, समस्त भौतिक पदार्थों की असलियत को जानता है, वही मनुष्य पण्डित कहलाने का अधिकारी है ।

प्रवृत्तवाक्चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् ।

आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ॥33॥

जो विचित्र तरीके से बातचीत करता है, वाणी को विराम नहीं देता, तर्क में निपुण और प्रतिभाशाली है, किसी ग्रन्थ के तत्त्वार्थ को शीघ्रता से बतला सकता है, वही पण्डित कहा जाता है ।

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।

असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत् सः ॥34॥

जिसकी बुद्धि विद्या का और विद्या बुद्धि का अनुसरण करती है तथा जो शिष्ट और मान्य व्यक्तियों की बातों का उल्लंघन नहीं करता, वही पण्डित कहा जाने योग्य है ।

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः ।

अर्थाश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥35॥

दरिद्र होकर भी अमीरों जैसा आचरण करनेवाले, बिना विद्या प्राप्त किये ज्ञान पर गर्व करनेवाले, बिना पुरुषार्थ धन पाने की लालसा रखनेवाले मनुष्य को पण्डित जन मूर्ख कहा करते हैं ।

स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति ।

मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते ॥36॥

जो मनुष्य स्व कर्तव्य को त्याग अन्य के कर्तव्य का पालन करता है तथा मित्र के साथ असत् व्यवहार किंवा घात करता है, वह मूर्ख कहा जाता है ।

अकामान् कामयति यः कामयानान् परित्यजेत् ।

बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम् ॥37॥

जो न चाहनेवालों को चाहता है तथा चाहनेवालों को त्याग देता है तथा अपने से बलवान् के साथ वैर साधता है, वही 'मूढ़' विचारवाला मनुष्य कहा जाता है ।

अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च ।

कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम् ॥38॥

जो मित्र को द्वेषवश कष्ट देता है तथा शत्रु से मित्रवत् व्यवहार करता है तथा सदैव बुरे कर्मों में ही लिप्त रहता है, उस मनुष्य को 'मूढ़ चित्त' वाला जानो ।

संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते ।

चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ ॥39॥

भरतश्रेष्ठ ! जो सभी को सन्देह के घेरे में रखता है, अपने कर्मों का व्यर्थ फैलाव करता है तथा कार्य समाप्ति में व्यर्थ ही (जान-बूझकर) विलम्ब करता है, वह मूर्ख है ।

श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति दैवतानि न चार्चति ।

सुहृन्मित्रं न लभते तमाहुर्मूढचेतसम् ॥40॥

जो देवार्चन नहीं करता, अपने पितरों का श्राद्ध नहीं करता, जिसे सज्जन मित्र नहीं मिलता, उस मनुष्य को ही 'मूढ़ चित्त' वाला कहते हैं ।

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते ।

अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ॥41॥

जो व्यक्ति बिना आज्ञा लिये किसी के घर में भीतर चला जाता है, तथा अविश्वसनीय लोगों पर विश्वास करता है, वही अधम मनुष्य 'मूढ़ चित्त' वाला कहलाता है ।

परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा ।

यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ॥42॥

स्वयं दोषी होकर भी जो दूसरों पर दोषारोपण करता है तथा असमर्थ होकर भी व्यर्थ क्रोध करता है, वह मनुष्य महामूर्ख है ।

आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम् ।

अलभ्यमिच्छन्नैष्कर्म्यान्मूढबुद्धिरिहोच्यते ॥43॥

जो व्यक्ति न पाने योग्य वस्तु को पाने की इच्छा करता है, अपने बल को न समझकर बिना पुरुषार्थ किये धर्म और अर्थ के विरुद्ध आचरण करता है, वह 'मूढ बुद्धि' है ।

अशिष्यं शास्ति यो राजन् यश्च शून्यमुपासते ।

कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढचेतसम् ॥44॥

राजन् ! जो मनुष्य अनधिकारी को उपदेश देता है, कृपण का आसरा लेता है तथा शून्य की उपासना करता है, वह 'मूढ चित्त' वाला है ।

अर्थ महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव वा ।

विवरत्यसमुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते ॥45॥

जिस मनुष्य को बहुत धन मिल जाये, विद्या प्राप्त हो जाये अथवा वह ऐश्वर्यशाली हो जाये लेकिन इतने पर भी गर्व न करे, वही पण्डित कहा जाता है ।

एकः सम्पन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम् ।

योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः ॥46॥

जो भी अपने द्वारा भरण-पोषण किये जाने योग्य हैं, उन्हें त्याग कर जो मनुष्य स्वयं सुस्वादु भोजन करता है, उत्तम वस्त्र धारण करता है, वह महान् क्रूर है ।

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः ।

भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ॥47॥

जो मनुष्य पाप कर्म से धनार्जन कर अनेक का भरण-पोषण क्यों न करता हो, तब भी उसे छोड़कर अन्य दूसरे लोग पाप के भागी नहीं होते अर्थात् पाप करनेवाला ही दण्ड का भागी होता है, अन्य नहीं ।



एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुमुक्तो धनुष्मता ।

बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद् राष्ट्रं साराजकम् ॥48॥

किसी धनुर्धारी के द्वारा संधान किया तीर भले ही किसी को मारे या न मारे परंतु बुद्धिमान द्वारा प्रयुक्त की हुई बुद्धि राजा के साथ-साथ सम्पूर्ण राष्ट्र का विनाश कर डालती है ।

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु ।

पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव ॥49॥

एक से दो अर्थात् बुद्धि से कर्तव्य-अकर्तव्य का निश्चय करके चार से तीन को अर्थात् साम-दाम-दण्ड-भेद से शत्रु-मित्र तथा उदासीन को वश में कीजिए । पांच को जीतकर छः अर्थात् पांच इन्द्रियों को वश में कर सन्धि-विग्रह-यान-आसन-द्वैधभाव और समाश्रयरूप गुणों को जानकर तथा सात (स्त्री-जुआ-आखेट-मद्य-कठोर वचन, दण्ड की कठोरता, अन्याय से धनोपार्जन) को छोड़कर सुखी हो जाइए ।

एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते ।

सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानां मन्त्रविप्लवः ॥50॥

विष का रस मात्र पीनेवाले को ही मारता है, शस्त्र से एक बार में एक का ही वध होता है लेकिन मन्त्र (भेद) के फूटने से राष्ट्र-प्रजा और राजा सभी का विनाश हो जाता है।

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थात्र चिन्तयेत् ।

एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥51॥

बहुत से सोये लोगों में अकेला जगनेवाला, अकेला स्वादिष्ट भोजन करनेवाला, किसी महत्त्वपूर्ण बात का अकेला निर्णय करनेवाला तथा अकेला रास्ता चलनेवाला सदैव घाटे में रहता है।

एकमेवाद्वितीयं तद् यद् राजन्नावबुध्यसे ।

सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ॥52॥

राजन् ! जैसे नदी पार जाने का एकमात्र नाव ही साधन है, वैसे ही स्वर्ग जाने का एकमात्र साधन सत्यपालन है, दूसरा नहीं लेकिन आप इसे नहीं समझ रहे।

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।

यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥53॥

क्षमाशील मनुष्य को एक ही दोष लगता है, दूसरे किसी दोष की सम्भावना भी नहीं होती और एकमात्र वह दोष है कि लोग उसे कायर समझते हैं।

सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम् ।

क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ॥54॥

किन्तु क्षमाशील पुरुष का वह दोष मानना नहीं चाहिए क्योंकि क्षमा बहुत बड़ा बल है। क्षमा समर्थ मनुष्य का भूषण और असमर्थ का गुण है।

क्षमा वशीकृतिलोके क्षमया किं न साध्यते ।

शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः ॥55॥

इस संसार में क्षमा ही वशीकरण रूप है, क्षमा से क्या सिद्ध नहीं हो सकता? जिस पुरुष के हाथ में शान्ति रूपी तलवार है उसका दुष्ट लोग क्या बिगाड़ लेंगे?

अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ।

अक्षमावान् परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत् ॥56॥

तृणरहित स्थान में गिरी आग अपने आप बुझ जाती है, क्षमाहीन पुरुष अपने को तथा दूसरे को भी दोष का भागी बना देता है ।

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा ।

विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ॥57॥

केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही शान्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है । एक विद्या ही परम सन्तोष को देनेवाली है और एकमात्र अहिंसा ही से सुख मिलता है ।

द्वाविमौ प्रसते भूमिः सर्पो विलशयानिव ।

राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥58॥

बिल में रहनेवाले चूहे आदि जीवों को जैसे सर्प खा जाता है, उसी प्रकार यह धरती शत्रुओं से विरोध न करनेवाले राजा और परदेश-वास न करनेवाले ब्राह्मण दोनों को ही खा जाती है ।

द्वै कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिंल्लोके विरोचते ।

अब्रुवन् पुरुषं किञ्चिदसतोऽनर्चयंस्तथा ॥59॥

जो व्यक्ति न तो कठोर सम्भाषण करता है, न ही दुष्ट पुरुषों का आदर करता है, वही इन दो कर्मों का कर्ता इस लोक में सम्मान प्राप्त करता है ।

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र परप्रत्ययकारिणौ ।

स्त्रियः कामितकामिन्यो लोकः पूजितपूजकः ॥60॥

किसी दूसरी स्त्री द्वारा चाहे गये पुरुष की कामना करनेवाली स्त्रियां तथा दूसरों के द्वारा पूजित मनुष्य का आदर करनेवाले पुरुष—ये दोनों ही प्रकार के जीव दूसरों के विश्वास पर जीते हैं ।

द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषिणौ ।

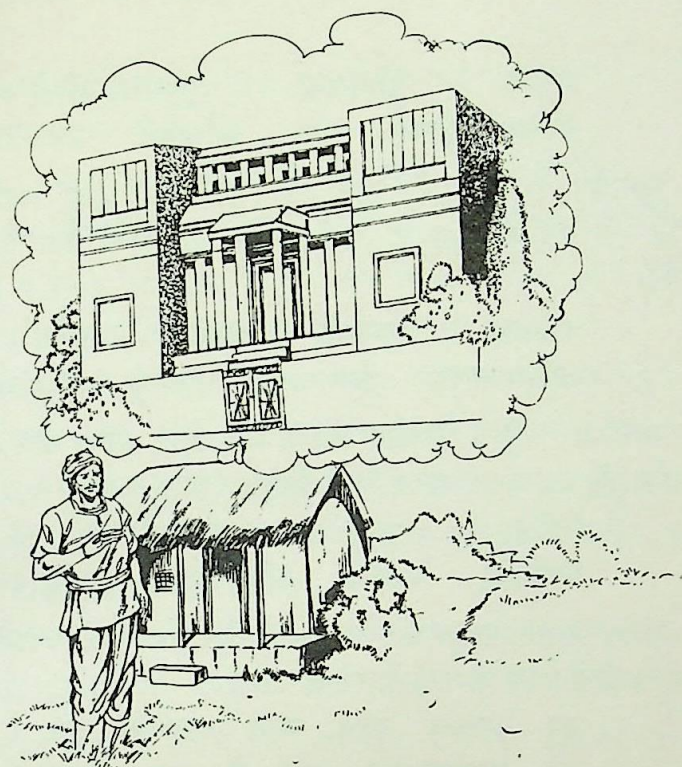
यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ॥61॥

जो निर्बल होकर भी क्रोध करता है तथा निर्धन होकर बहुमूल्य वस्तुओं की कामना करता है, ये दोनों ही अपने देह को सुखानेवाले कांटे के समान हैं ।

द्वावेव न विराजते विपरीतेन कर्मणा ।

गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवांश्चैव भिक्षुकः ॥62॥

प्रपंच में लगा साधु तथा अकर्मण्य गृहस्थ—ये दोनों ही अपने विपरीत कर्म के कारण सम्मान नहीं पाते ।



द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥63॥

राजन् ! शक्तिशाली होकर भी क्षमा करनेवाला तथा निर्धन होकर भी दूसरों को दान देनेवाला—ये दोनों ही स्वर्ग से भी उत्तम सुख को पाते हैं ।

न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम् ॥64॥

न्यायपूर्वक कमाये धन के दो ही दुरुपयोग हैं जैसे सत्पात्र को न देना और अपात्र को दान करना ।

द्वावभ्रसि निवेष्टव्यौ गले बद्धा दृढां शिलाम् ।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥65॥

जो व्यक्ति धनी होकर भी दान नहीं देता और निर्धन होकर कष्ट सहन नहीं कर सकता—इन दोनों प्रकार के लोगों के गले में भारी पत्थर बांधकर नदी में फेंक देना चाहिए ।

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥66॥

पुरुषश्रेष्ठ ! संग्राम में लड़ते हुए मारा गया योद्धा तथो योगयुक्त संन्यासी—ये दोनों ही प्रकार के लोग सूर्यमंडल को भेदकर ऊर्ध्वगति को प्राप्त होते हैं ।

त्रयोपाया मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ ।
कनीयान्मध्यमः श्रेष्ठ इति वेदविदो विदुः ॥67॥

भरतश्रेष्ठ ! मनुष्यों की कार्यसिद्धि के लिए उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन प्रकार के उपाय सुने जाते हैं जिन्हें वेदवेत्ता विद्वान् जानते हैं ।

त्रिविधाः पुरुषा राजनुत्तमाधममध्यमाः ।
नियोजयेद् यथावत् तांस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥68॥

राजन् ! उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन प्रकार के लोग होते हैं, इनको यथायोग्य तीनों प्रकार के कर्मों में लगाना चाहिए ।

त्रय एवाधना राजन् भार्या दासस्तथा सुतः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥69॥

राजन् ! स्त्री, पुत्र और दास—ये तीनों धन के अधिकारी नहीं होते बल्कि ये जो कुछ भी कमाते हैं, वह उसी का होता है जिसके अधीन वे होते हैं ।

हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षमावहा ॥70॥

निन्द्य उपायों से दूसरे के धन को छीन लेना, परायी स्त्रियों के साथ व्यभिचार करना और सुहृद् मित्र का परित्याग—ये तीनों कर्म मनुष्य की आयु, धर्म और यश का विनाश करते हैं ।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामःक्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥71॥

काम, क्रोध और लोभ—ये आत्मा के नाश करनेवाले नरक के तीन द्वार हैं अतः इन तीनों को ही त्याग देना चाहिए ।

वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च भारत ।
शत्रोश्च मोक्षणं कृच्छ्रत्वीणी चैकं च तत्समम् ॥72॥

भारत ! राज्य की प्राप्ति, पुत्र का जन्म, मनोअभिलषित पदार्थों का

पाना—ये तीनों बातें एक ओर तथा शत्रु के कष्ट से मुक्त होना एक ओर, वे तीन और यह एक बराबर ही हैं।

भक्तं न भजमानं च तवास्मीति च वादिनम् ।

त्रीनेतांश्छरणं प्राप्तान् विषमेऽपि न सन्त्यजेत् ॥73॥

पूर्व के सेवक, भक्त तथा 'मैं मात्र आप ही का हूँ' ऐसा कहनेवाले— इन तीन प्रकार के मनुष्यों को संकट पड़ने पर भी नहीं छोड़ना चाहिए।

चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन वर्ज्यान्याहुः पण्डितास्तानि विद्यात् ।

अल्पप्रज्ञैः सह मन्त्रं न कुर्यान् दीर्घसूत्रै रभसैश्चारणैश्च ॥74॥

अल्पज्ञ (थोड़ी बुद्धिवाले), दीर्घसूत्री, जल्दबाज और चापलूसी करने वालों के साथ गुप्त मन्त्रणा किसी भी बुद्धिमान् राजा को नहीं करनी चाहिए, महाबली राजा को चाहिए कि इन चारों का त्याग कर दे।

चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्थधर्मे ।

वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः सखा दरिद्रो भगिनी चानपत्या ॥75॥

हे तात ! गृहस्थ धर्म में स्थित धन-धान्य से भरपूर आप के घर में चार प्रकार के व्यक्तियों को अग्रशय ही आश्रय मिलना चाहिए—वृद्ध सम्बन्धी, कष्ट में लिप्त उच्च कुल का व्यक्ति, धनहीन मित्र और सन्तानहीन बहन।

चत्वार्याह महाराज साद्यस्कानि बृहस्पतिः ।

पृच्छते त्रिदशेन्द्राय तानीमानि निबोध मे ॥76॥

देवतानां च सङ्कल्पमनुभावं च धीमताम् ।

विनयं कृतिविद्यानां विनाशं पापकर्मणाम् ॥77॥

हे राजेन्द्र ! देव गुरु बृहस्पति ने देवराज इन्द्र के पूछने पर जिन चार बातों को तत्काल फल देनेवाली बतलाया था, वे हैं—देवों का संकल्प, बुद्धिमानों का वर्चस्व, विद्वानों की विनम्रता तथा दुर्गुणों का परित्याग।

चत्वारि कर्माण्यभयङ्कराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ।

मानान्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ॥78॥

मनुष्य द्वारा किये गये चार कर्म—निष्ठा के साथ अग्निहोत्र, आदरपूर्वक किया गया मौनव्रत, आस्था और विश्वास से किया स्वाध्याय, शास्त्रानुसार किया गया यज्ञ अभय प्रदाता माने गये हैं परन्तु शास्त्र विपरीत अर्थात् दिखाने के लिए किये जाने पर ये भी महान् भय को देनेवाले अनर्थकारी हो जाते हैं।

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः ।
 पिता माताग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ ॥७९॥

हे भरतश्रेष्ठ ! पिता, माता, अग्निहोत्र, आत्मा और गुरु—इन पांच अग्नियों की मनुष्य को प्रयत्नपूर्वक सेवा करनी चाहिए ।

पञ्चैव पूजयंल्लोके यशः प्राप्नोति केवलम् ।
 देवान् पितॄन् मनुष्यांश्च भिक्षूनतिथिपञ्चमान् ॥८०॥

देवता, पितर, अकस्मात् आया अतिथि, मनुष्य एवं संन्यासी—इन पांचों की सेवा करनेवाला व्यक्ति संसार में महान् यश को पा लेता है ।

पञ्च त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि ।
 मित्राण्यमित्रा मध्यस्था उपजीव्यौपजीविनः ॥८१॥

राजन् ! मित्र, शत्रु, उदासीन-आश्रय देनेवाले तथा पानेवाले, आप जहां-जहां जाएंगे, वहीं-वहीं ये पांच आप के पीछे लगे रहेंगे ।

पञ्चेन्द्रियश्च मर्त्यश्च छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम् ।
 ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा द्यूतेः पात्रादिवोदकम् ॥८२॥

पांच ज्ञानेन्द्रियोंवाले पुरुष की यदि एक भी इन्द्रिय दोषयुक्त हो जाये तो उसकी बुद्धि उससे इस प्रकार बाहर निकल जाती है जैसे मशक से पानी ।

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
 निद्रा तन्द्रा भयं क्रोधं आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥८३॥

ऐश्वर्य किंवा उन्नति चाहनेवाले व्यक्ति को निद्रा, तन्द्रा, डर, क्रोध, आलस्य तथा दीर्घसूत्रता अर्थात् शीघ्रता से होने वाले कार्य में अनावश्यक देरी करना—इन छः दुर्गुणों को त्याग देना चाहिए ।

षडिमान् पुरुषो जह्याद् भिन्नां नावमिवाण्वि ।
 अप्रवक्तारमाचायमनधीयानमृत्विजम् ॥८४॥

अरक्षितार राजानं भार्या चाप्रियवादिनीम् ।
 ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम् ॥८५॥

उपदेश न देनेवाले आचार्य, मन्त्रोच्चारण न करनेवाला होता, रक्षा करने में असमर्थ राजा, कटु वचन बोलनेवाली स्त्री, गांव में रहने की इच्छा करनेवाले ग्वाले और वन में रहने की इच्छा करनेवाला नाई—इन छः का साथ इसी प्रकार त्याग दें जैसे समुद्र की सैर करनेवाला व्यक्ति जीर्ण नौका को त्याग देता है ।

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन ।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः ॥८६॥

मनुष्य को इन छः गुणों—सत्य, दान, कर्मण्यता, गुणों में दोष दिखाने की प्रवृत्ति का अभाव (अनसूया), क्षमा तथा धैर्य का कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिए ।

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च ।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥८७॥

राजन् ! धन की आय, नित्य नीरोगता, स्त्री का अनुकूल तथा प्रियवादिनी होना, पुत्र का आज्ञाकारी होना तथा धनार्जन की विधि में कुशल होना—ये छः बातें मृत्युलोक में सुखदायिनी कही गयी हैं ।

षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति ।
न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः ॥८८॥

मन में नित्य रहनेवाले छः शत्रु—काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, तथा मात्सर्य—को जो वश में कर लेता है, वह जितेन्द्रिय पुरुष पापों से लिप्त नहीं होता, फिर उनसे उत्पन्न होनेवाले अनर्थों की तो बात ही क्या है ।

षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोपलभ्यते ।
चौराः प्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु चिकित्सकाः ॥८९॥
प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः ।
राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः ॥९०॥

निम्नांकित छः प्रकार के मनुष्य छः प्रकार के लोगों से अपनी जीविका चलाते हैं, सातवें की उपलब्धि नहीं होती । चोर असावधान पुरुष से, वैद्य रोगी से, मतवाली स्त्रियां कामियों से, पुरोहित यजमानों से, राजा झगड़ने वालों से तथा विद्वान् पुरुष मूर्खों से अपनी जीविका चलाते हैं ।

षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात् ।
गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसंगतिः ॥९१॥

क्षण भर भी देख-रेख न करने से गौ, सेवा, खेती, स्त्री, विद्या तथा शूद्रों से मेल—ये छः चीजें नष्ट हो जाती हैं ।

षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम् ।
आचार्य शिक्षिताः शिष्या कृतदाराश्च मातरम् ॥९२॥

नारीं विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम् ।

नावं निस्तीर्णकांतारा आतुराश्च चिकित्सकम् ॥१९३॥

ये छः सदा अपने पूर्व उपकारी का अनादर करते हैं—शिक्षा समाप्त हो जाने पर शिष्य आचार्य का, विवाहित बेटे माता का, कामवासना की शान्ति हो जाने पर मनुष्य स्त्री का, कृतकार्य पुरुष सहायक का, नदी की दुर्गम धारा पार कर लेनेवाले पुरुष नाव का तथा रोगी पुरुष रोग छूटने के बाद वैद्य का तिरस्कार कर देते हैं ।

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः

सद्भिर्भर्तुष्यैः सह सम्प्रयोगः ।

स्वप्रत्ययावृत्तिरभीतवासः

षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥१९४॥

राजन् ! नीरोग रहना, ऋणी न होना, परदेस में न रहना, अच्छे लोगों के साथ मेल होना, अपनी वृत्ति से जीविका चलाना और निडर होकर रहना—ये छः मनुष्य लोक के सुख हैं ।

ईर्ष्या घृणी न सन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः ।

परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः ॥१९५॥

ईर्ष्या करनेवाला, घृणा करनेवाला, असंतोषी, क्रोधी, सदा शंकित रहनेवाला और दूसरे के भाग्य पर जीवन-निर्वाह करनेवाला—ये छः सदा दुखी रहते हैं ।

सप्त दोषाः सदा राज्ञा हातव्या व्यसनोदयाः ।

प्रायशा यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः ॥१९६॥

स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमम् ।

महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च ॥१९७॥

स्त्री विषयक आसक्ति, जुआ, शिकार, मद्यपान, वचन की कठोरता, अत्यन्त कठोर दण्ड देना और धन का दुरुपयोग करना—ये सात दुःखदायी दोष राजा को सदा त्याग देने चाहिए । इनसे दृढमूल राजा भी प्रायः नष्ट हो जाते हैं ।

अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यतः ।

ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते ॥१९८॥

ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति ।

रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाभिनन्दति ॥१९९॥

नैनान् स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति ।

एतान् दोषान्तरः प्राज्ञो बुध्येद् बुद्ध्या विसर्जयेत् ॥100॥

विनाश के मुख में पड़नेवाले मनुष्य के आठ पूर्व चिह्न हैं—प्रथम तो वह ब्राह्मणों से द्वेष करता है, फिर उनके विरोध का पात्र बनता है, ब्राह्मणों का धन हड़प लेता है, उनको मारना चाहता है, ब्राह्मणों की निन्दा में आनन्द मानता है, उनकी प्रशंसा सुनना नहीं चाहता, यज्ञ-यागादि में उनका स्मरण नहीं करता तथा कुछ मांगने पर उनमें दोष निकालने लगता है। इन सब दोषों को बुद्धिमान् मनुष्य समझे और समझकर त्याग दे।

अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत ।

वर्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव स्वसुखान्यपि ॥101॥

समागमश्च सखिभिर्महांश्चैव धनागमः ।

पुत्रेण च परिष्वङ्गः सन्निपातश्च मैथुने ॥102॥

समये च प्रियालापः स्वयूष्येषु समुन्नतिः ।

अभिप्रेतस्य लाभश्च पूजा च जनसंसदि ॥103॥

भारत ! मित्रों से समागम, अधिक धन की प्राप्ति, पुत्र का आलिङ्गन, मैथुन में प्रवृत्ति, समय पर प्रिय वचन बोलना, अपने वर्ग के लोगों में उन्नति, अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति और जनसमाज में सम्मान—ये आठ हर्ष के सार दिखाई देते हैं और ये ही अपने लौकिक सुख के भी साधन होते हैं।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।

पराक्रमश्चावहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥104॥

बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रिय-निग्रह, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, अधिक धन बोलना, शक्ति के अनुसार दान और कृतज्ञता—ये आठ गुण पुरुष की ख्याति बढ़ा देते हैं।

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्यूणं पञ्चसाक्षिकम् ।

क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः ॥105॥

जो विद्वान् पुरुष (आंख, कान आदि) नौ दरवाजेवाले, तीन (वात, पित्त तथा कफरूपी) खंभोंवाले, पांच (ज्ञानेन्द्रिय रूप) साक्षीवाले, आत्मा के निवास स्थान इस शरीररूपी गृह को जानता है, वह बहुत बड़ा ज्ञानी है।

दश धर्म न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान् ।

मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥106॥

त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।

तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः ॥107॥

महाराज धृतराष्ट्र ! दस प्रकार के लोग धर्म को नहीं जानते, उनके नाम सुनो—नशे में मतवाला, असावधान, पागल, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, जल्दबाज, लोभी, भयभीत और कामी । ये दस हैं । अतः इन सब लोगों में विद्वान् पुरुष आसक्ति न बढ़ावे ।

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं

पुरातनम् ।

पुत्रार्थमसुरेन्द्रेण

गीतं

चैव

सुधन्वना ॥108॥

इसी विषय में असुरों के राजा प्रह्लाद ने सुधन्वा के साथ अपने पुत्र के प्रति कुछ उपदेश दिया था । नीतिज्ञ लोग उस पुराने इतिहास का उदाहरण देते हैं ।

यः काममन्यू प्रजहाति राजा पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च ।

विशेषविच्छ्रुतवान् क्षिप्रकारी तं सर्वलोकः कुरुते प्रमाणम् ॥109॥

जो राजा काम और क्रोध का त्याग करता है और सुपात्र को धन देता है, विशेषज्ञ है, शास्त्रों का ज्ञाता और कर्तव्य को शीघ्र पूरा करने वाला है, उसे सब लोग प्रमाण मानते हैं ।

जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान् विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम् ।

जानाति मात्रां च तथा क्षमा च तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्र ॥110॥

जो मनुष्यों में विश्वास उत्पन्न करना जानता हो, जो प्रमाणित अपराधी को ही दण्ड देता है, जो दण्ड देने की न्यूनाधिक मात्रा तथा क्षमा का उपयोग जानता है, उस राजा की सेवा में सम्पूर्ण सम्पत्ति चली आती है ।

सुदुर्बलं नावजानाति किञ्चित् युक्तो रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम् ।

न विग्रहं रोचयते बलस्थैः काले च यो विक्रमते स धीरः ॥111॥

जो किसी दुर्बल का अपमान नहीं करता, सदा सावधान रहकर शत्रु के साथ बुद्धिपूर्वक व्यवहार करता है, बलवानों के साथ युद्ध पसंद नहीं करता तथा समय आने पर पराक्रम दिखाता है, वही धीर है ।

प्राप्यापदं न व्यथते कदाचिदुद्योगमन्विच्छति चाग्रमतः ।

दुःखं च काले सहते महात्मा धुरन्धरस्तस्य जिताः सपत्नाः ॥112॥

जो धुरन्धर महापुरुष आपत्ति पड़ने पर कभी दुखी नहीं होता, बल्कि सावधानी के साथ उद्योग का आश्रय लेता है तथा समय पर दुःख सहता है, उसके शत्रु तो पराजित ही हैं ।

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः पापैः सन्धिं परदाराभिमर्शम् ।
दम्भं स्तैन्यं पैशुनं मद्यपानं न सेवते यश्च सुखी सदैव ॥113॥

जो निरर्थक विदेशवास, पापियों से मेल, परस्त्री गमन, पाखण्ड, चोरी, चुगलखोरी तथा मदिरापान नहीं करता, वह सदा सुखी रहता है ।

न संरम्भेणारभते त्रिवर्गमाकारितः शंसति तत्त्वमेव ।
न मित्रार्थे रोचयते विवादं नापूजितं कुप्यति चाप्यमूढः ॥114॥
न योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च न दुर्बलः प्रातिभाष्यं करोति ।
नात्याह किञ्चित्क्षमते विवादं सर्वत्र तादृगु लभते प्रशंसाम् ॥115॥

जो क्रोध या उतावली के साथ धर्म, अर्थ तथा काम का आरम्भ नहीं करता, पूछने पर यथार्थ बात ही बतलाता है, मित्र के लिए झगड़ा पसंद नहीं करता, आदर न पाने पर क्रुद्ध नहीं होता, विवेक नहीं खो बैठता, दूसरों के दोष नहीं देखता, सब पर दया करता है, दुर्बल होते हुए किसी की जमानत नहीं देता, बढ़कर नहीं बोलता तथा विवाद को सह लेता है, ऐसा मनुष्य सब जगह प्रशंसा पाता है ।

यो नोद्धतं कुरुते जातु वेषं न पौरुषेणापि विकत्यतेऽन्यान् ।
न मूर्च्छितः कटुकान्याह किञ्चित् प्रियं सदा तं कुरुते जनो हि ॥116॥

जो कभी उद्वण्ड का-सा वेष नहीं बनाता, दूसरों के सामने अपने पराक्रम की भी डींग नहीं हांकता, क्रोध से व्याकुल होने पर भी कटु वचन नहीं बोलता, उस मनुष्य को लोग सदा ही प्यारा बना लेते हैं ।

न वैरमुदीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति ।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ॥117॥

जो शान्त हुई वैर की आग को फिर प्रज्वलित नहीं करता, गर्व नहीं करता, हीनता नहीं दिखाता तथा मैं विपत्ति में पड़ा हूँ, ऐसा सोचकर अनुचित काम नहीं करता, उस उत्तम आचरणवाले पुरुष को आर्यजन सर्वश्रेष्ठ कहते हैं ।

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः ।
दत्त्वा न पश्चात्कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते संतुष्टार्यशीलः ॥118॥

जो अपने सुख में प्रसन्न नहीं होता, दूसरे के दुःख के समय हर्ष नहीं मानता और दान देकर पश्चात्ताप नहीं करता, वह सज्जनों में सदाचारी कहलाता है ।

देशाचारान् समयाजातिधर्मान् बुभूषते यः स परावरजः ।

स यत्र तत्राभिगतः सदैव महाजनस्याधिपत्यं करोति ॥119॥

जो मनुष्य देश के व्यवहार, लोकाचार तथा जातियों के धर्मों को जानने की इच्छा करता है, उसे उत्तम, अधम का विवेक हो जाता है। वह जहां कहीं भी जाता है, सदा महान् जनसमूह पर अपनी प्रभुता स्थापित कर लेता है।

दम्भं मोहं मत्सरं पापकृत्यं राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम् ।

मतोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं यः प्रज्ञावान् वर्जयेत् स प्रधानः ॥120॥

जो बुद्धिमान् दम्भ, मोह, मात्सर्य, पाप कर्म, राजद्रोह, चुगलखोरी, समूह से वैर और मतवाले, पागल तथा दुर्जनों से विवाद छोड़ देता है वह श्रेष्ठ है।

दानं होमं दैवतं मङ्गलानि प्रायश्चित्तान् विविधांल्लोकवादान् ।

एतानि यः कुरुते नैत्यकानि तस्योत्थानं देवताराधयन्ति ॥121॥

जो दान, होम, देव-पूजन, मांगलिक कर्म, प्रायश्चित्त तथा अनेक प्रकार के लौकिक आचार—इन नित्य किये जाने योग्य कर्मों को करता है, देवता लोग उसके अभ्युदय की सिद्धि करते हैं।



समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः समैः सख्यं व्यवहारं कथां च ।

गुणैर्विशिष्टांश्च पुरो दधाति विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः ॥122॥

जो अपने बराबरवालों के साथ विवाह, मित्रता, व्यवहार तथा बातचीत करता है, हीन मनुष्यों के साथ नहीं; और गुणों में बढ़े-चढ़े पुरुषों को सदा आगे रखता है। उस विद्वान् की नीति श्रेष्ठ है।

मितं भुङ्क्ते संविभज्याश्रितेभ्यो मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा ।

ददात्यमित्रेष्वपि याचितः संस्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः ॥123॥

जो अपने आश्रित जनों को बांटकर थोड़ा ही भोजन करता है, बहुत अधिक काम करके भी थोड़ा सोता है तथा मांगने पर, जो मित्र नहीं है, उसे भी धन देता है, उस मनस्वी पुरुष को सारे अनर्थ दूर से ही छोड़ देते हैं।

चिकीर्षितं विप्रकृतं च यस्य नान्ये जनाः कर्म जानन्ति किञ्चित् ।

मन्त्रे गुप्ते सम्यगनुष्ठिते च नात्पोऽप्यस्य च्यवते कश्चिदर्थः ॥124॥

जिसके अपनी इच्छा के अनुकूल और दूसरों की इच्छा के विरुद्ध कार्य को दूसरे लोग कुछ भी नहीं जान पाते, मन्त्र गुप्त रहने और अभीष्ट कार्य का ठीक-ठीक सम्पादन होने के कारण उसका थोड़ा भी काम बिगड़ने नहीं पाता।

यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः सत्यो मूढुर्मानकृच्छुद्धभावः ।

अतीव स ज्ञायते ज्ञातिमध्ये महामणिर्जात्य इव प्रसन्नः ॥125॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण भूतों को शान्ति प्रदान करने में तत्पर, सत्यवादी, कोमल, दूसरों को आदर देनेवाला तथा पवित्र विचारवाला होता है, वह अच्छी खान से निकले और चमकते हुए श्रेष्ठ रत्न की भांति अपनी जाति वालों में अधिक प्रसिद्धि पाता है।

य आत्मनापत्रपते भृशं नरः स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत ।

अनन्ततेजाः सुमनाः समाहितः स तेजसा सूर्य इवावभासते ॥126॥

जो स्वयं ही अधिक लज्जाशील है, वह सब लोगों में श्रेष्ठ समझा जाता है। वह अपने अनन्त तेज, शुद्ध हृदय एवं एकाग्रता से युक्त होने के कारण कान्ति में सूर्य के समान शोभा पाता है।

वने जाताः शापदग्धस्य राज्ञः पाण्डोः पुत्राः पञ्च पञ्चेन्द्रकल्याः ।

त्वयैव बाला वर्धिताः शिक्षिताश्च तवादेशं पालयन्त्याम्बिकेय ॥127॥

अम्बिकानन्दन ! शाप से दग्ध राजा पाण्डु के जो पांच पुत्र वन में उत्पन्न हुए, वे पांच इन्द्र के समान शक्तिशाली हैं, उन्हें आप ही ने बचपन से पाला और शिक्षा दी है, वे भी सदा आपकी आज्ञा का पालन करते रहते हैं।

प्रदायैषामुचितं तात राज्यं सुखी पुत्रैः सहितो मोदमानः ।

न देवानां नापि च मानुषाणां भविष्यसि त्वं तर्कणीयो नरेन्द्र ॥128॥

तात ! उन्हें उनका न्यायोचित राज्य भाग देकर आप अपने पुत्रों के साथ आनन्द भोगिए। हे नरेन्द्र ! ऐसा करने पर आप देवता तथा मनुष्यों की टीका-टिप्पणी के विषय नहीं रह जाएंगे।

इति श्री महाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि
विदुरनीतिवाक्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

दूसरा अध्याय

सार संक्षेप

- धृतराष्ट्र का व्याकुल होकर अपने हित की बात पूछना ।
- विदुर के द्वारा हित की बात कहने की प्रतिज्ञा ।
- असत् उपायों से सफलता मिले तो भी उधर मन न लगाए और अच्छे उपायों से असफलता होती हो तो भी इसके लिए मन में ग्लानि न करे । इसका प्रतिपादन प्रयोजन, परिणाम और उन्नति का विचार करके कार्य करने की आज्ञा ।
- कौन राज्य में स्थिर नहीं रहता और कौन राज्य पाता है, इसका विवेचन ।
- उद्वण्डता से सम्पत्ति का नाश और परिणाम का विचार न करने से हानि ।
- पचने योग्य और परिणाम में हितकर अन्न खाने की सलाह ।
- वृक्ष के कच्चे और पके फलों को तोड़ने से हानि और लाभ ।
- राजा को प्रजा की रक्षा करते हुए ही उससे धन लेना चाहिए । इस विषय में भ्रमर और माली का दृष्टान्त ।
- लाभ-हानि का विचार करके कार्य करे या न करे, व्यर्थ कर्मों का आरम्भ न करे ।
- प्रजा किसे नहीं चाहती तथा शीघ्र आरम्भ करने योग्य कार्य ।
- प्रजा किससे अनुराग रखती है, राजा अपने को किस प्रकार रखे, लोग किस राजा से प्रसन्न रहते हैं तथा प्रजा किसे त्याग देती है, इन सब बातों का विवेचन ।
- अन्याय से राज्य का नाश और धर्म से धन-धान्य तथा ऐश्वर्य की वृद्धि ।

- धर्म के त्याग और अधर्म के अनुष्ठान से हानि ।
- दूसरों के राष्ट्र का नाश करने की अपेक्षा अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए किये गये प्रयत्न का औचित्य, धर्म मूल की लक्ष्मी की स्थिरता ।
- सब ओर से सारभूत बातों को ग्रहण करने की आवश्यकता ।
- कौन कैसे देखता है, अविनय से हानि और विनय से लाभ तथा अपने से बलवान् के सामने नतमस्तक होने की नीति का प्रतिपादन ।
- कौन किसका रक्षक है एवं किससे किसकी रक्षा होती है, इसका विवेचन ।
- कुल की अपेक्षा सदाचार की श्रेष्ठता, ईर्ष्या एक असाध्य रोग है, किससे डरे और क्या न पिये ।
- असत् पुरुषों की निन्दा और सत् पुरुषों की प्रशंसा ।
- शील की श्रेष्ठता ।
- धनाढ्य, मध्यवित्त तथा दरिद्रों के भोजन ।
- अधम, मध्यम तथा उत्तम पुरुषों के भय का हेतु, ऐश्वर्य मद की निन्दा ।
- इन्द्रियों को वश में न रखने से हानि ।
- इन्द्रिय सहित मन और अमात्यों को जीतकर ही शत्रुओं पर विजय पाने की चेष्टा के औचित्य का प्रतिपादन ।
- लक्ष्मी किसकी अत्यन्त सेवा करती है, भीरु पुरुष कैसे सुखपूर्वक यात्रा करता है ।
- मन और इन्द्रियों को न जीतने से हानि और जीतने से लाभ ।
- काम और क्रोध से विज्ञान लोप, धर्म और अर्थ का विचार करके विजय साधन-सामग्री के संग्रह की आवश्यकता, आन्तरिक शत्रुओं को जीतकर ही बाह्य शत्रुओं को जीतने की इच्छा का समर्थन ।
- दुष्ट पुरुषों से मेल करने की मनाही, पांचों इन्द्रियों को न जीतने से विपत्ति की सम्भावना तथा दुरात्मा एवं अधम पुरुषों से अनसूया आदि उत्तम गुणों का अभाव ।
- क्षमा का महत्त्व ।
- विशेष अर्थयुक्त विचित्र वाणी की दुर्लभता, मधुर वाणी से लाभ और कटु वचन से हानि । बुद्धि के नष्ट होने से पराजय एवं विनाश ।
- विदुर का युधिष्ठिर के गुण बताकर राजा धृतराष्ट्र का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट करना ।

दूसरा अध्याय विस्तार से

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः ।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ॥



जैसे भंवरा फूलों की रक्षा करता हुआ ही उनके
मधु का आस्वादन करता है, उसी प्रकार राजा
भी प्रजाजनों को कष्ट दिए बिना
ही उनसे धन ले।

धृतराष्ट्र उवाच

जाग्रतो दह्यमानस्य यत् कार्यमनुपश्यसि ।

तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—तात ! मैं चिन्ता से जलता हुआ अभी तक जाग रहा हूँ, तुम मेरे करने योग्य जो कार्य समझो, उसे बताओ, क्योंकि हम लोगों में तुम्हीं धर्म और अर्थ के ज्ञान में निपुण हो ।

त्वं मां यथावद् विदुर प्रशाधि प्रज्ञापूर्वं सर्वमजातशत्रोः ।

यन्मन्यसे पथ्यमदीनसत्त्व श्रेयस्करं ब्रूहि तद् वै कुरुणाम् ॥२॥

उदारचित्त विदुर ! तुम अपनी बुद्धि से विचारकर मुझे ठीक-ठीक उपदेश करो । जो बात युधिष्ठिर के लिए हितकर और कौरवों के लिए कल्याणकारी समझो, वह सब अवश्य बताओ ।

पापाशङ्की पापमेवानुपश्यन् पृच्छामि त्वां व्याकुलेनात्मनाहम् ।

कवे तन्मे ब्रूहि सर्वं यथावन्मनीषितं सर्वमजातशत्रोः ॥३॥

विदुर ! मेरे मन में अनिष्ट की आशंका बनी रहती है, इसलिए मैं सर्वत्र अनिष्ट ही देखता हूँ, अतः व्याकुल हृदय से मैं तुमसे पूछ रहा हूँ— अजातशत्रु युधिष्ठिर क्या चाहते हैं, सो सब ठीक-ठीक बताओ ।

विदुर उवाच

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम् ।

अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद् यस्य नेच्छेत्पराभवम् ॥४॥

विदुरजी ने कहा—मनुष्यों को चाहिए कि वह जिसकी पराजय नहीं चाहता, उसको बिना पूछे भी कल्याण करनेवाली या अनिष्ट करनेवाली अच्छी अथवा बुरी, जो भी बात हो, बता दे ।

तस्माद् वक्ष्यामि ते राजन् हितं यत्स्यात् कुरुन्नृति ।

वचः श्रेयस्करं धर्म्यं ब्रुवतस्तन्निबोध मे ॥५॥

इसलिए राजन् ! जिससे समस्त कौरवों का हित हो, वही बात आपसे कहूंगा । मैं जो कल्याणकारी एवं धर्मयुक्त वचन कह रहा हूँ, उन्हें आप ध्यान देकर सुनें ।

मिथ्योपेतानि कर्माणि सिध्येयुर्यानि भारत ।

अनुपायप्रयुक्तानि मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥६॥

भारत ! असत् उपायों (जुआ आदि) का प्रयोग करके जो कपटपूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं, उनमें आप मन मत लगाइए ।

तथैव योगविहितं यत्तु कर्म न सिध्यति ।

उपाययुक्तं मेधावी न तत्र गल्पयेन्मनः ॥7॥

इसी प्रकार अच्छे उपायों का उपयोग करके सावधानी के साथ किया गया कोई कर्म यदि सफल न हो तो बुद्धिमान् पुरुष को उसके लिए मन में ग्लानि नहीं करनी चाहिए ।

अनुबन्धानपेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु ।

सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत् ॥8॥

किसी प्रयोजन से किये गये कर्मों में पहले प्रयोजन को समझ लेना चाहिए । खूब सोच-विचारकर काम करना चाहिए, जल्दबाजी से किसी काम का आरम्भ नहीं करना चाहिए ।

अनुबन्धं च सम्प्रेक्ष्य विपाकं चैव कर्मणाम् ।

उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा ॥9॥

धीर मनुष्य को उचित है कि पहले कर्मों के प्रयोजन, परिणाम तथा अपनी उन्नति का विचार करके फिर काम आरम्भ करे या न करे ।

यः प्रमाणं न जानाति स्थानेवृद्धौ तथा क्षये ।

कोशे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते ॥10॥

जो राजा स्थिति, लाभ, हानि, कोष, देश तथा दण्ड आदि की मात्रा को नहीं जानता, वह राज्य पर स्थिर नहीं रह सकता ।

यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तन्यनुपश्यति ।

युक्तो धर्मार्थयोज्ञानि स राज्यमधिगच्छति ॥11॥

जो इनके प्रमाण को ठीक-ठीक जानता है तथा धर्म और अर्थ के ज्ञान में दत्तचित्त रहता है, वह राज्य को प्राप्त करता है ।

न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसाम्प्रतम् ।

श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रूपमिवोत्तमम् ॥12॥

‘अब तो राज्य प्राप्त हो ही गया’ ऐसा समझकर अनुचित बर्ताव नहीं करना चाहिए । उद्वण्डता सम्पत्ति को उसी प्रकार नष्ट कर देती है, जैसे सुन्दर रूप को बुढ़ापा ।

भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं

मत्स्यो

वडिशमायसम् ।

लोभाभिपाती

ग्रसते

नानुबन्धमवेक्षते ॥13॥

मछली बढ़िया चारे से ढकी हुई लोहे की कांटी को लोभ में पड़कर निगल जाती है, उससे होनेवाले परिणाम पर विचार नहीं करती ।



यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत् ।

हितं च परिणामे यत् तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥14॥

अतः अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुष को वही वस्तु खानी (या ग्रहण करनी) चाहिए जो खाने योग्य हो तथा खायी जा सके, खाने (या ग्रहण करने) पर पच सके और पच जाने पर हितकारी हो ।

वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः ।

स नान्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति ॥15॥

जो पेड़ से कच्चे फलों को तोड़ता है, वह उन फलों से रस तो पाता नहीं, उल्टे उस वृक्ष के बीज का नाश होता है ।

यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम् ।

फलाद् रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः ॥16॥

परंतु जो समय पर पके हुए फल को ग्रहण करता है, वह फल से रस पाता है और उस बीज से पुनः फल प्राप्त होता है।

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः ।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ॥17॥

जैसे भौरा फूलों की रक्षा करता हुआ ही उनके मधु का आस्वादन करता है, उसी प्रकार राजा भी प्रजाजनों को कष्ट दिये बिना ही उनसे धन ले।

पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत् ।
मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारकः ॥18॥

जैसे माली बगीचे में एक-एक फूल तोड़ता है, उसकी जड़ नहीं काटता, उसी प्रकार राजा प्रजा की रक्षापूर्वक उससे कर (टैक्स) ले। कोयला बनानेवाले की तरह जड़ नहीं काटनी चाहिए।

किन्तु मे स्यादिदं कृत्वा किन्तु मे स्यादकुर्वतः ।
इति कर्माणि सञ्चिन्त्य कुर्याद् वा पुरुषो न वा ॥9॥

इसे करने से मेरा क्या लाभ होगा और न करने से क्या हानि होगी। इस प्रकार कर्मों के विषय में भली-भाँति विचार करके फिर मनुष्य करे या न करे।

अनारभ्या भवन्त्यर्थाः केचिन्नित्यं तथाऽगताः ।
कृतः पुरुषकारो हि भवेद् येषु निरर्थकः ॥10॥

कुछ ऐसे व्यर्थ कार्य हैं, जो नित्य प्राप्त होने के कारण आरम्भ करने योग्य नहीं होते, क्योंकि उनके लिए किया हुआ पुरुषार्थ भी व्यर्थ हो जाता है।

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ॥11॥

जिसकी प्रसन्नता का कोई फल नहीं और क्रोध भी व्यर्थ है, उसको प्रजा स्वामी बनाना नहीं चाहती। जैसे स्त्री नपुंसक को पति नहीं बनाना चाहती।

कांश्चिदर्थान्नरः प्राज्ञो लघुमूलान्महाफलान् ।
क्षिप्रमारभते कर्तुं न विघ्नयति तादृशान् ॥12॥

जिनका मूल (साधन) छोटा और फल महान् हो, बुद्धिमान् पुरुष उनको शीघ्र ही आरम्भ कर देता है, वैसे कामों में वह विघ्न नहीं आने देता।

ऋजु पश्यति यः सर्वं चक्षुषानुपिबन्निव ।
आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः ॥23॥

जो राजा मानो आंखों से पी जायेगा, इस प्रकार प्रेम के साथ कोमल दृष्टि से देखता है, वह चुपचाप बैठा रहे तो भी प्रजा उससे अनुराग रखती है।

सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद् दुरारुहः ।

अपक्वः पक्वसंकाशो न तु शीर्येत कर्हिचित् ॥24॥

राजा वृक्ष की भांति अच्छी तरह फूलने (प्रसन्न रहने) पर भी फल से खाली रहे (अधिक देनेवाला न हो), यदि फल से युक्त (देनेवाला) हो तो भी जिस पर चढ़ा न जा सके, ऐसा (पहुंच के बाहर) होकर रहे। कच्चा (कम शक्तिवाला) होने पर भी पके (शक्तिसम्पन्न) की भांति अपने को प्रकट करे। ऐसा करने से वह नष्ट नहीं होता।

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम् ।

प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति ॥25॥

जो राजा नेत्र, मन, वाणी और कर्म—इन चारों से प्रजा को प्रसन्न करता है, उसी से प्रजा प्रसन्न रहती है।

यस्मात् त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव ।

सागरान्तामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते ॥26॥

जैसे व्याध से हिरन भयभीत होता है, उसी प्रकार जिससे समस्त प्राणी डरते हैं, वह समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का राज्य पाकर भी प्रजाजनों के द्वारा त्याग दिया जाता है।

पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा ।

वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः ॥27॥

अन्याय में स्थित हुआ राजा बाप-दादों का राज्य पाकर भी अपने ही कर्मों से उसे इस तरह भ्रष्ट कर देता है जैसे हवा बादल को छिन्न-भिन्न कर देती है।

धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः ।

वसुधा वसुसम्पूर्णा वर्धते भूतिवर्धिनी ॥28॥

परम्परा से सज्जन पुरुषों द्वारा किये हुए धर्म का आचरण करनेवाले राजा के राज्य की पृथ्वी धन-धान्य से पूर्ण होकर उन्नति को प्राप्त होती है और उसके ऐश्वर्य को बढ़ाती है।

अथ सन्त्यजतो धर्ममधर्मं चानुतिष्ठतः ।

प्रतिसंवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा ॥29॥

जो राजा धर्म को छोड़ता और अधर्म का अनुष्ठान करता है, उसकी राज्यभूमि आग पर रखे हुए चमड़े की भांति संकुचित हो जाती है।

य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने ।

स एव यत्नः कर्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने ॥30॥

जो यत्न दूसरे राष्ट्रों का नाश करने के लिए किया जाता है, वही अपने राज्य की रक्षा के लिए करना उचित है।

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत् ।

धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते ॥31॥

धर्म से ही राज्य प्राप्त करे और धर्म से ही उसकी रक्षा करे, क्योंकि धर्ममूलक राज्यलक्ष्मी को पाकर न तो राजा उसे छोड़ता है और न वही राजा को छोड़ती है।

अप्युन्मत्तात् प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः ।

सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव काञ्चनम् ॥32॥

निरर्थक बोलनेवाले पागल तथा बकवाद करनेवाले बच्चे से भी सब ओर से उसी भांति तत्त्व की बात ग्रहण करनी चाहिए, जैसे पथरों में से सोना ले लिया जाता है।

सुव्यहतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः ।

सञ्चिन्वन् धीर आसीत् शिलाहारी शिलं यथा ॥33॥

जैसे उच्छ्वृत्ति से जीविका चलानेवाला एक-एक दाना चुगता रहता है, उसी प्रकार धीर पुरुष को जहां-तहां से भावपूर्ण वचनों, सूक्तियों और सत्कर्मों का संग्रह करते रहना चाहिए।

गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणः ।

चरैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥34॥

गौएं गंध से, ब्राह्मण लोग वेदों से, राजा जासूसों से और अन्य साधारण लोग आंखों से देखा करते हैं।

भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुदुहा ।

अथ या सुदुहा राजन् नैव तां वितुदन्त्यपि ॥35॥

राजन् ! जो गाय बड़ी कठिनाई से दुहने देती है, वह बहुत क्लेश उठाती है, किंतु जो आसानी से दूध देती है, उसे लोग कष्ट नहीं देते।

यदतप्तं प्रणमति न तत् सन्तापयन्त्यपि ।

यच्च स्वयं नतं दारु न तत् सन्नमयन्त्यपि ॥38॥

जो धातु बिना गरम किये मुड़ जाती हैं, उन्हें आग में नहीं तपाते। जो काठ स्वयं झुका होता है, उसे कोई झुकाने का प्रयत्न नहीं करता।

एतयोपमया धीरः सन्नमेत बलीयसे ।

इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे ॥39॥

इस दृष्टांत के अनुसार बुद्धिमान् पुरुष को अधिक बलवान् के सामने झुक जाना चाहिए। जो अधिक बलवान् के सामने झुकता है, वह मानो इन्द्र देवता को प्रणाम करता है।



पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मन्त्रिबान्धवाः ।

पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेदबान्धवाः ॥40॥

पशुओं के रक्षक या स्वामी हैं बादल, राजाओं के सहायक हैं मन्त्री, स्त्रियों के बन्धु (रक्षक) हैं पति और ब्राह्मणों के बान्धव हैं वेद।

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।

मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥41॥

सत्य से धर्म की रक्षा होती है, योग से विद्या सुरक्षित होती है, सफाई से सुन्दर रूप की रक्षा होती है और सदाचार से कुल की रक्षा होती है।

मानेन रक्षते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः ।

अभीक्षणदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचैलतः ॥40॥

तोलने से नाज की रक्षा होती है, फेरने से घोड़े सुरक्षित रहते हैं, बारंबार देखभाल करने से गौओं की तथा मैले वस्त्र से स्त्रियों की रक्षा होती है ।

न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः ।

अन्तेष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते ॥41॥

मेरा ऐसा विचार है कि सदाचार से हीन मनुष्य का केवल ऊंचा कुल मान्य नहीं हो सकता क्योंकि नीच कुल में उत्पन्न मनुष्यों का भी सदाचार श्रेष्ठ माना जाता है ।

य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये ।

सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः ॥42॥

जो दूसरों के धन, रूप, पराक्रम, कुलीनता, सुख, सौभाग्य और सम्मान पर डाह करता है, उसका यह रोग असाध्य है ।

अकार्यकरणाद् भीतः कार्याणां च विवर्जनात् ।

अकाले मन्त्रभेदाच्च येन माद्येन्न तत् पिबेत् ॥43॥

न करने योग्य काम करने से, करने योग्य काम से प्रमाद करने से तथा कार्य सिद्ध होने के पहले ही मन्त्र प्रकट हो जाने से डरना चाहिए और जिससे नशा चढ़े, ऐसा पेय नहीं पीना चाहिए ।

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः ।

मदा एतेऽवलिप्तानामेत एवं सतां दमाः ॥44॥

विद्या का मद, धन का मद और तीसरा ऊंचे कुल का मद है । ये घमंडी पुरुषों के लिए तो मद हैं, परंतु सज्जन पुरुषों के लिए मद के साधन हैं ।

असन्तोऽभ्यर्थिताः सद्भिः क्वचित्कार्ये कदाचन ।

मन्यन्ते सन्तमात्मानमसन्तमपि विश्रुतम् ॥45॥

कभी किसी कार्य में सज्जनों द्वारा प्रार्थित होने पर दुष्ट लोग अपने को प्रसिद्ध दुष्ट जानते हुए भी सज्जन मानने लगते हैं ।

गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः ।

असतां च गतिः सन्तो न त्वसन्तः सतां गतिः ॥46॥

मनस्वी पुरुषों को सहारा देनेवाले संत हैं, संतों के भी सहारे संत ही हैं, दुष्टों को भी सहारा देनेवाले संत हैं, पर दुष्ट लोग संतों को सहारा नहीं देते।

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता ।

अध्वा जितो यानवता सर्व शीलवता जितम् ॥47॥

अच्छे वस्त्रवाला सभा को जीतता (अपना प्रभाव जमा लेता) है, जिसके पास गौ है, वह मीठे स्वाद की आकांक्षा को जीत लेता है, सवारी से चलनेवाला मार्ग को जीत (तय कर) लेता है और शीलवान् पुरुष सब पर विजय पा लेता है।

शीलं प्रधानं पुरुषे तद् यस्येह प्रणश्यति । ।

न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः ॥48॥

पुरुष में शील ही प्रधान है, जिसका वही नष्ट हो जाता है, इस संसार में उसका जीवन धन, और बन्धुओं से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

आद्र्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम् ।

तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ ॥49॥

भरतश्रेष्ठ ! धनोन्मत्त पुरुषों के भोजन में मांस की, मध्यम श्रेणीवालों के भोजन में गोरस की तथा दरिद्रों के भोजन में तेल की प्रधानता होती है।

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा ।

क्षुत् स्वादुतां जनयति सा चाद्र्येषु सुदुर्लभा ॥50॥

दरिद्र पुरुष सदा स्वादिष्ट ही भोजन करते हैं, क्योंकि भूख उनके भोजन में स्वाद उत्पन्न कर देती है और वह (भूख) धनियों के लिए सर्वथा दुर्लभ है।

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते ।

जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते ॥51॥

राजन् ! संसार में धनियों को प्रायः भोजन करने की शक्ति नहीं होती, किंतु दरिद्रों के पेट में काठ भी पच जाते हैं।

अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद् भयम्

उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात् परं भयम् ॥52॥

अधम पुरुषों को जीविका न होने से भय लगता है, मध्यम श्रेणी मनुष्यों को मृत्यु से भय होता है, परंतु उत्तम पुरुषों को अपमान से ही महान् भय होता है।

ऐश्वर्यमदपापिष्ठा

मदाः

पानमदादयः ।

ऐश्वर्यमदमत्तो

हि

नापतित्वा

विबुध्यते ॥53॥



यों तो पीने का नशा आदि भी नशा ही है, किंतु ऐश्वर्य का नशा तो बहुत ही बुरा है क्योंकि ऐश्वर्य के मद से मतवाला पुरुष भ्रष्ट हुए बिना होश में नहीं आता ।

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु

वर्तमानैरनिग्रहैः ।

तैरयं ताप्यते

लोको

नक्षत्राणि

ग्रहैरिव ॥54॥

वश में होने के कारण विषयों में रमनेवाली इन्द्रियों से यह संसार उसी भांति कष्ट पाता है, जैसे सूर्य आदि ग्रहों से नक्षत्र तिरस्कृत हो जाते हैं ।

यो जितः

पञ्चवर्गेण

सहजेनात्मकर्षिणा ।

आपदस्तस्य

वर्धन्ते

शुक्लपक्ष

इवोदुराट् ॥55॥

जो जीवों को वश में करनेवाली सहज पांच इन्द्रियों से जीत लिया गया, उसकी आपत्तियां शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भांति बढ़ती हैं ।

अविजित्य

य

आत्मानममात्यान्

विजिगीषते ।

अभित्रान्

वाऽजितामात्यः

सोऽवशः

परिहीयते ॥56॥

इन्द्रियों सहित मन को जीते बिना ही जो मन्त्रियों को जीतने की इच्छा करता है या मन्त्रियों को अपने अधीन किये बिना शत्रु को जीतना चाहता है, उस अजितेन्द्रिय पुरुष को सब लोग त्याग देते हैं ।

आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण यो जयेत् ।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते ॥57॥

जो पहले इन्द्रियों सहित मन को ही शत्रु समझकर जीत लेता है, उसके बाद यदि वह मन्त्रियों तथा शत्रुओं को जीतने की इच्छा करे तो उसे सफलता मिलती है ।

वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु ।
परीक्ष्य कारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥58॥

इन्द्रियों तथा मन को जीतनेवाले, अपराधियों को दण्ड देनेवाले और जांच-परखकर काम करनेवाले धीर पुरुष की लक्ष्मी अत्यन्त सेवा करती है ।

रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः ।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः ॥59॥

राजन् ! मनुष्य का शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है और इन्द्रियां इसके घोड़े हैं । इनको वश में करके सावधान रहनेवाला चतुर एवं धीर पुरुष काबू में किये हुए घोड़ों से रथी की भांति सुखपूर्वक यात्रा करता है ।

एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम् ।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ॥60॥

शिक्षा न पाये हुए तथा काबू में न आनेवाले घोड़े जैसे मूर्ख सारथी को मार्ग में मार गिराते हैं, वैसे ही ये इन्द्रियां वश में न रहने पर पुरुष को मार डालने में समर्थ होती हैं ।

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः ।
इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुःखं मन्यते सुखम् ॥61॥

इन्द्रियां वश में न होने के कारण अर्थ को अनर्थ और अनर्थ को अर्थ समझकर अज्ञानी पुरुष बहुत बड़े दुःख को भी सुख मान बैठता है ।

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः ।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ॥62॥

जो धर्म और अर्थ का परित्याग करके इन्द्रियों के वश में हो जाता है, वह शीघ्र ही ऐश्वर्य, प्राण, धन तथा स्त्री से भी हाथ धो बैठता है।

अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः ।

इन्द्रियाणामनैश्वर्याद् भ्रश्यते हि सः ॥63॥

जो अधिक धन का स्वामी होकर भी इन्द्रियों पर अधिकार नहीं रखता, वह इन्द्रियों को वश में न रखने के कारण ही ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाता है।

आत्मनाऽऽमानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः ।

आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥64॥

मन, बुद्धि और इन्द्रियों को अपने अधीन कर अपने से ही अपने आत्मा को जानने की इच्छा करे, क्योंकि आत्मा ही अपना बन्धु और आत्मा ही अपना शत्रु है।

बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनैवात्माऽऽत्मना जितः ।

स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः ॥65॥

जिसने स्वयं अपनी आत्मा को ही जीत लिया है, उसकी आत्मा ही उसका बन्धु है। वही सच्चा बन्धु है और वही नियत शत्रु है।

क्षुद्राक्षणेव जालेन श्पावपिहितावुरु ।

कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः ॥66॥

राजन्! जिस प्रकार सूक्ष्म छेदवाले जाल में फंसी हुई दो बड़ी-बड़ी मछलियां मिलकर जाल को काट डालती हैं, उसी प्रकार ये काम और क्रोध—दोनों विशिष्ट ज्ञान को लुप्त कर देते हैं।

समवेक्ष्येह धर्मार्थौ सम्भारान् योऽधिगच्छति ।

स वै सम्भृतसम्भारः सततं सुखमेधते ॥67॥

जो इस जगत् में धर्म तथा अर्थ का विचार कर विजय-साधन-सामग्री का संग्रह करता है, वही उस सामग्री से युक्त होने के कारण सदा सुखपूर्वक समृद्धिशाली होता रहता है।

यः पञ्चाभ्यन्तरमाञ्छन्नून्विजित्य मनोमयान् ।

जिगीषति रिपून्न्यान् रिपवोऽभिभवन्ति तम् ॥68॥

जो चित्त के विकारभूत पांच इन्द्रियरूपी भीतरी शत्रुओं को जीते बिना ही दूसरे शत्रुओं को जीतना चाहता है, उसे शत्रु पराजित कर देते हैं।

दृश्यन्ते हि महात्मानो बध्यमानाः स्वकर्मभिः ।

इन्द्रियाणामनीशत्वाद् राजानो राज्यविभ्रमैः ॥69॥

इन्द्रियों पर अधिकार न होने के कारण बड़े-बड़े साधु भी कर्मों से तथा राजा लोग राज्य के भोग-विलासों से बंधे रहते हैं ।

असंत्यागात् पापकृतामपापांस्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात् ।

शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात् तस्मात् पापैः सहसन्धिं न कुर्यात् ॥70॥

पापाचारी दुष्टों का त्याग न करके उनके साथ मिले रहने से निरपराध सज्जनों को भी उनके समान ही दण्ड प्राप्त होता है, जैसे सूखी लकड़ी में मिल जाने से गीली भी जल जाती है, इसलिए दुष्ट पुरुषों के साथ कभी मेल न करें ।

निजानुत्पततः शत्रून् पञ्च पञ्चप्रयोजनान् ।

यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद् ग्रसते नरम् ॥71॥

जो पांच विषयों की ओर दौड़नेवाले अपने पांच इन्द्रियरूपी शत्रुओं को मोह के कारण वश में नहीं करता, उस मनुष्य को विपत्ति ग्रस लेती है ।

अनसूयाऽऽर्जवं शौचं सन्तोषः प्रियवादिता ।

दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम् ॥72॥

गुणों में दोष न देखना, सरलता, पवित्रता, संतोष, प्रिय वचन बोलना, इन्द्रिय दमन, सत्य भाषण तथा अचंचलता—ये गुण दुरात्मा पुरुषों में नहीं होते ।

आत्मज्ञानमसंरम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।

वाक् चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत ॥73॥

भारत ! आत्मज्ञान, अक्रोध, सहनशीलता, धर्मपरायणता, वचन की रक्षा तथा दान—ये गुण अधम पुरुषों में नहीं होते ।

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान् ।

वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते ॥74॥

मूर्ख मनुष्य विद्वानों को गाली और निन्दा से कष्ट पहुंचाते हैं । गाली देनेवाला पाप का भागी होता है और क्षमा करनेवाला पाप से मुक्त हो जाता है ।

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम् ।

शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम् ॥75॥

दुष्ट पुरुषों का बल है हिंसा, राजाओं का बल है दण्ड देना, स्त्रियों का बल

है सेवा और गुणवाचकों—गुणवानों का बल है क्षमा ।

वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः ।

अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहु भाषितुम् ॥76॥

राजन् ! वाणी का पूर्ण संयम तो बहुत कठिन माना ही गया है, परन्तु विशेष अर्थयुक्त और चमत्कारपूर्ण वाणी भी अधिक नहीं बोली जा सकती ।

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता ।

सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते ॥77॥

राजन् ! मधुर शब्दों में कही हुई बात अनेक प्रकार से कल्याण करती है, किन्तु वही यदि कटु शब्दों में कही जाय तो महान् अनर्थ का कारण बन जाती है ।

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।

वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥78॥

बाणों से बींधा हुआ तथा फरसे से काटा हुआ वन भी पनप जाता है, किन्तु कटु वचन कहकर वाणी से किया हुआ भयानक घाव नहीं भरता ।

कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः ।

वाक्शल्पस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ॥79॥

कर्णि, नालीक और नाराच नामक बाणों को शरीर से निकाल सकते हैं, परन्तु कटु वचनरूपी कांटा नहीं निकाला जा सकता, क्योंकि वह हृदय के भीतर धंस जाता है ।

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति राज्यहानि ।

परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः ॥80॥

वचनरूपी बाण मुख से निकलकर दूसरों के मर्म पर ही चोट करते हैं, उससे आहत मनुष्य रात-दिन घुलता रहता है । अतः विद्वान् पुरुष दूसरों पर उनका प्रयोग न करे ।

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवं ।

बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति ॥81॥

देवता लोग जिसे पराजय देते हैं, उसकी बुद्धि को पहले ही हर लेते हैं, इससे वह नीच कर्मों पर ही अधिक दृष्टि रखता है ।

बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते ।
 अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ॥८२॥

विनाशकाल उपस्थित होने पर बुद्धि मलिन हो जाती है, फिर तो न्याय समान प्रतीत होनेवाला अन्याय हृदय से बाहर नहीं निकलता ।

सेयं बुद्धिः परीता ते पुत्राणां भरतर्षभ ।
 पाण्डवानां विरोधेन न चैनानवबुध्यसे ॥८३॥

भरतश्रेष्ठ ! आपके पुत्रों की वह बुद्धि पाण्डवों के प्रति विरोध से व्याप्त हो गयी है, आप इन्हें पहचान नहीं रहे हैं ।

राजा लक्षण सम्पन्नस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत् ।
 शिष्यस्ते शासिता सोऽस्तु धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः ॥८४॥

महाराज धृतराष्ट्र ! जो राजलक्षणों से सम्पन्न होने के कारण त्रिभुवन का भी राजा हो सकता है, वह आपका आज्ञाकारी युधिष्ठिर ही इस पृथ्वी का शासक होने योग्य है ।

अतीत्य सर्वान् पुत्रांस्ते भागधेयपुरस्कृतः ।
 तेजसा प्रज्ञया चैव युक्तो धर्मार्थतत्त्ववित् ॥८५॥

वह धर्म तथा अर्थ के तत्त्व को जाननेवाला, तेज और बुद्धि से युक्त, पूर्ण, सौभाग्यशाली तथा आपके सभी पुत्रों से बढ़-चढ़कर है ।

अनुक्रोशादानृशंस्याद् योऽसौ धर्मभृतां वरः ।
 गौरवात् तव राजेन्द्र बहून् क्लेशांस्तितिक्षति ॥८६॥

राजेन्द्र ! धर्मधारियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर दया, सौम्य भाव तथा आपके प्रति गौरव-बुद्धि के कारण बहुत कष्ट सह रहा है ।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि
 विदुरनीतिवाक्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

तीसरा अध्याय

सार संक्षेप

- धृतराष्ट्र का विदुर से पुनः धर्मार्थयुक्त वचन कहने का अनुरोध ।
- विदुर के द्वारा उपदेश, आर्जव (कोमलतापूर्ण बर्ताव) की प्रशंसा, धृतराष्ट्र को आर्जव नामक गुण को अपनाने का आदेश ।
- इस लोक में पुण्यकीर्ति होने से मनुष्य की स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा ।
- केशिनी के लिए सुधन्वा और विरोचन में अपनी-अपनी श्रेष्ठता को लेकर विवाद, दोनों का निर्णय के लिए प्रह्लाद के पास जाना, प्रह्लाद के द्वारा सुधन्वा का सत्कार, उल्टा न्याय-देनेवाले वक्ता को प्राप्त होनेवाले दोष, प्रह्लाद के द्वारा सुधन्वा की श्रेष्ठता का निर्णय और सुधन्वा का विरोचन को प्राणदान ।
- विदुर का धृतराष्ट्र से भूमि के लिए झूठ न बोलने का अनुरोध ।
- उत्तम एवं कल्याणमयी बुद्धि से रक्षा और सम्पूर्ण अर्थों की सिद्धि ।
- कपटी को वेद भी पाप से नहीं बचा सकते, सबके लिए त्याग देने योग्य दुर्गुण, साक्षी न बनाने योग्य सात प्रकार के व्यक्ति तथा भय को दूर करने वाले चार कर्म ।
- ब्रह्महत्याओं के समान पापी ।
- किसकी कब परीक्षा होती है और कौन क्या हर लेता है ।
- लक्ष्मी की उत्पत्ति, वृद्धि, स्थिरता और सुरक्षा के हेतु तथा पुरुषों को उद्दीप्त करनेवाले आठ सद्गुण ।
- राजा द्वारा किये हुए सत्कार की महत्ता तथा स्वर्गलोक का दर्शन कराने वाले आठ सद्गुण ।

- ❑ धर्म के आठ मार्ग ।
- ❑ वृद्धों से सभा की, धर्म से वृद्धों की, सत्य से धर्म की और निश्छलता से सत्य की प्रतिष्ठा ।
- ❑ स्वर्ग की प्राप्ति करानेवाले दस साधन, पाप की निंदा और पुण्य की प्रशंसा ।
- ❑ प्रज्ञा की प्रशंसा, भावी सुख के लिए पहले से ही सत्कर्म करने की प्रेरणा किसकी कब प्रशंसा की जाती है, अधर्म द्वारा प्राप्त हुए धन से दोष नहीं छिपता तथा कौन किसका शासक है, इन बातों का विवेचन ।
- ❑ किन-किन का मूल नहीं जाना जा सकता, कौन दीर्घकालिक पृथ्वी का पालन करता है और कौन मनुष्य पृथ्वी से सुवर्ण रूपी पुष्प का चयन करते हैं ।
- ❑ तीन प्रकार के कार्य ।
- ❑ दुर्योधन आदि पर राजभार रखने से उन्नति की सम्भावना नहीं, पाण्डवों के साथ पुत्रवत् व्यवहार कीजिए—यह विदुरजी की धृतराष्ट्र को सलाह ।

तीसरा अध्याय विस्तार से

नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरम् ।
पुण्य प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥



जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मनुष्य सदा
पाप ही करता रहता है। इसी प्रकार बारंबार
किया हुआ पुण्य बुद्धि को बढ़ाता है।

धृतराष्ट्र उवाच

ब्रूहि भूयो महाबुद्धे धर्मार्थसहितं वचः ।

शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिर्विचित्राणीह भाषसे ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—महाबुद्धे ! तुम पुनः धर्म और अर्थ से युक्त बातें कहो, इन्हें सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती। इस विषय में तुम अद्भुत भाषण कर रहे हो।

विदुर उवाच

सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम् ।

उभे त्वेते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते ॥२॥

विदुरजी बोले—सब तीर्थों में स्नान और सब प्राणियों के साथ कोमलता का बर्ताव—ये दोनों एक समान हैं, अथवा कोमलता के बर्ताव का विशेष महत्त्व है।

आर्जवं प्रतिपद्यस्व पुत्रेषु सततं विभो ।

इह कीर्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥३॥

विभो ! आप अपने पुत्र कौरव-पाण्डव दोनों के साथ समान रूप से कोमलता का बर्ताव कीजिए। ऐसा करने से इस लोक में महान् सुयश प्राप्त करके मरने के पश्चात् आप स्वर्गलोक में जायेंगे।

यावत् कीर्तिर्मनुष्यस्य पुण्या लोके प्रगीयते ।

तावत् स पुरुषव्याघ्र स्वर्गलोके महीयते ॥४॥

पुरुषश्रेष्ठ ! इस लोक में जब तक मनुष्य की पावन कीर्ति का गान किया जाता है, तब तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं

पुरातनम् ।

विरोचनस्य

संवादं

केशिन्यर्थे

सुधन्वना ॥५॥

इस विषय में उस प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं, जिसमें 'केशिनी' के लिए सुधन्वा के साथ विरोचन के विवाद का वर्णन है।

स्वयंवरे स्थिता कन्या केशिनी नाम नामतः ।

रूपेणाप्रतिमा

राजन्

विशिष्टपतिकाम्यया ॥६॥

राजन् ! एक समय की बात है, केशिनी नामवाली एक अनुपम सुन्दरी कन्या सर्वश्रेष्ठ पति को वरण करने की इच्छा से स्वयंवर-सभा में उपस्थित हुई।

विरोचनोऽथ दैतेयस्तदा तत्राजगाम ह ।
प्राप्नुमिच्छंस्ततस्तत्र दैत्येन्द्रं प्राह केशिनी ॥७॥

उसी समय दैत्यकुमार विरोचन उसे प्राप्त करने की इच्छा से वहां आया ।
तब केशिनी ने वहां दैत्यराज से इस प्रकार बातचीत की ।

केशिन्युवाच

किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रयांसो दितिजा स्विद्विरोचन ।
अथ केन स्म पर्यङ्गं सुधन्वा नाधिरोहति ॥८॥



केशिनी ने कहा—विरोचन! ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं या दैत्य? यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं तो सुधन्वा ब्राह्मण ही मेरी शैया पर क्यों न बैठे! अर्थात् मैं सुधन्वा से विवाह क्यों न करूं!

विरोचन उवाच

प्राजापत्यास्तु वै श्रेष्ठा वयं केशिनि सत्तमाः ।
अत्माकं खल्विमे लोकाः के देवाः के द्विजातयः ॥९॥

विरोचन ने कहा—केशिनी ! हम प्रजापति की श्रेष्ठ संतानें हैं, अतः सबसे उत्तम हैं। यह सारा संसार हम लोगों का ही है। हमारे सामने देवता क्या है और ब्राह्मण कौन चीज है?

केशिन्युवाच

इहैवावां प्रतीक्षाव उपस्थाने विरोचन ।

सुधन्वा प्रातरागन्ता पश्येयं वां समागतौ ॥10॥

केशिनी बोली—हे विरोचन! यहीं पर हम दोनों प्रतीक्षा करें। प्रातःकाल सुधन्वा जब आएगा, तब मैं तुम दोनों को देखूंगी।

विरोचन उवाच

तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे ।

सुधन्वानं च मां चैव प्रातर्द्रष्टासि संगती ॥11॥

विरोचन बोला—कल्याणि! तुम जैसा कहती हो, वही करूंगा। भीरु! प्रातःकाल मुझे और सुधन्वा को एक साथ उपस्थित देखोगी।

विदुर उवाच

अतीतायां च शर्वर्यामुदिते सूर्यमण्डले ।

अथाजगाम तं देशं सुधन्वा राजसत्तम ।

विरोचनो यत्र विभो केशिन्या सहितः स्थितः ॥12॥

विदुरजी कहते हैं—राजाओं में श्रेष्ठ धृतराष्ट्र! इसके बाद जब रात बीती और सूर्यमण्डल का उदय हुआ, उस समय सुधन्वा उस स्थान पर आया, जहां विरोचन केशिनी के साथ मौजूद था।

सुधन्वा च समागच्छत् प्राह्लादिं केशिनीं तथा ।

समागतं द्विजं दृष्ट्वा केशिनी भरतर्षभ ।

प्रत्युत्थायासनं तस्मै पाद्यमर्घ्यं ददौ पुनः ॥13॥

भरतश्रेष्ठ ! सुधन्वा प्रह्लादकुमार विरोचन और केशिनी के पास आया। ब्राह्मण को आया देख केशिनी उठ खड़ी हुई और उसने उसे आसन, पाद्य और अर्घ्य निवेदन किया।

सुधन्वोवाच

अन्वालभे हिरण्यमयं प्राह्लादे ते वरासनम् ।

एकत्वमुपसम्पन्नौ न त्वासेऽहं त्वया सह ॥14॥

सुधन्वा बोला—प्रह्लादनन्दन! मैं तुम्हारे इस सुवर्णमय सुन्दर सिंहासन को केवल छू लेता हूँ, तुम्हारे साथ इस पर बैठ नहीं सकता, क्योंकि ऐसा होने से हम दोनों एक समान हो जायेंगे।

विरोचन उवाच

तवाहते तु फलकं कूर्चं वाप्यथवा बृसी ।

सुधन्वन् त्वमहोऽसि मया सह समासनम् ॥15॥

विरोचन ने कहा—सुधन्वन् ! तुम्हारे लिए तो पीढ़ा, चटाई या कुश का आसन उचित है, तुम मेरे साथ बराबर के आसन पर बैठने योग्य हो ही नहीं।

सुधन्वोवाच

पितापुत्रौ सहासीतां द्वौ विप्रौ क्षत्रियावपि ।

वृद्धौ वैश्यौ च शूद्रौ च न त्वन्यावितरेतरम् ॥16॥

सुधन्वा ने कहा—पिता और पुत्र एक साथ एक आसन पर बैठ सकते हैं, दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो वृद्ध, दो वैश्य और दो शूद्र भी एक साथ बैठ सकते हैं, किंतु दूसरे कोई दो व्यक्ति परस्पर एक साथ नहीं बैठ सकते।

पिता हि ते समासीनमुपासीतैव मामधः ।

बालः सुवैधितो गेहे न त्वं किञ्चन बुध्यसे ॥17॥

तुम्हारे पिता प्रह्लाद नीचे बैठकर ही मेरी सेवा किया करते हैं। तुम अभी बालक हो, घर में सुख से पले हो, अतः तुम्हें इन बातों का कुछ भी ज्ञान नहीं है।

विरोचन उवाच

हिरण्यं च गवाश्वं च यद्वित्तमसुरेषु नः ।

सुधन्वन् विपणे तेन प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः ॥18॥

विरोचन बोला—सुधन्वन्! हम असुरों के पास जो कुछ भी सोना, गौ, घोड़ा आदि धन है, उसकी मैं बाजी लगाता हूँ, हम तुम दोनों चलकर जो इस विषय के जानकार हों, उनसे पूछें कि हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है?

सुधन्वोवाच

हिरण्यं च गवाश्वं च तवैवास्तु विरोचन ।

प्राणयोस्तु पणं कृत्वा प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः ॥19॥

सुधन्वा बोला—विरोचन! सुवर्ण, गाय और घोड़ा तुम्हारे ही पास रहें, हम दोनों प्राणों की बाजी लगाकर जो जानकार हों, उनसे पूछें।

विरोचन उवाच

आवां कुत्र गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते ।

न तु देवेष्वहं स्थाता न मनुष्येषु कर्हिचित् ॥20॥

विरोचन ने कहा—अच्छा, प्राणों की बाजी लगाने के पश्चात् हम दोनों कहां चलेंगे? मैं तो न देवताओं के पास जा सकता हूं और न कभी मनुष्यों से ही निर्णय करा सकता हूं।

सुधन्वावाच

पितरं ते गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते ।

पित्रस्यापि स हेतोर्हि प्रह्लादो नानृतं वदेत् ॥21॥

सुधन्वा बोला—प्राणों की बाजी लग जाने पर हम दोनों तुम्हारे पिता के पास चलेंगे। (मुझे विश्वास है कि) प्रह्लाद अपने बेटे के लिए भी झूठ नहीं बोल सकते हैं।

विदुर उवाच

एवं कृतपणौ क्रुद्धौ तत्राभिजग्मतुस्तदा ।

विरोचनसुधन्वानौ प्रह्लादो यत्र तिष्ठति ॥22॥

विदुरजी कहते हैं—इस तरह बाजी लगाकर परस्पर क्रुद्ध हो विरोचन और सुधन्वा दोनों उस समय वहां गये, जहां प्रह्लादजी बैठे थे।

प्रह्लाद उवाच

इमौ तौ सम्प्रदृश्येते याभ्यां न चरितं सह ।

आशीविषाविव क्रुद्धावेकमार्गाविहागतौ ॥23॥

प्रह्लाद ने (मन-ही-मन) कहा—जो कभी भी एक साथ नहीं चले थे, वे ही दोनों, ये सुधन्वा और विरोचन आज सांप की तरह क्रुद्ध होकर एक ही राह से आते दिखाई देते हैं।

किं वै सहैवं चरथो न पुरा चरथः सह ।

विरोचनैतत् पृच्छामि किं ते सख्यं सुधन्वानां ॥24॥

फिर विरोचन से कहा—विरोचन! मैं तुमसे पूछता हूं, क्या सुधन्वा के साथ तुम्हारी मित्रता हो गयी है? फिर कैसे एक साथ आ रहे हो? पहले तो तुम दोनों कभी एक साथ नहीं चलते थे।

विरोचन उवाच

न मे सुधन्वना सख्यं प्राणयोर्विपणावहे ।
प्रह्लाद तत्त्वं पृच्छामि मा प्रश्नमनृतं वदेः ॥25॥

विरोचन बोला—पिताजी! सुधन्वा के साथ मेरी मित्रता नहीं हुई है। हम दोनों प्राणों की बाजी लगाये आ रहे हैं। मैं आपसे यथार्थ बात पूछता हूँ। मेरे प्रश्न का झूठा उत्तर न दीजिएगा।

प्रह्लाद उवाच

उदकं मधुपर्कं वाप्यानयन्तु सुधन्वने ।
ब्रह्मन्भ्यर्चनीयोऽसि श्वेता गौः पीवरी कृता ॥26॥

प्रह्लाद ने कहा—सेवको! सुधन्वा के लिए जल और मधुपर्क लाओ। (फिर सुधन्वा से कहा—) ब्राह्मण! तुम मेरे पूजनीय अतिथि हो, मैंने तुम्हारे लिए सफेद गौ खूब मोटी-ताजी कर रखी है।

सुधन्वोवाच

उदकं मधुपर्कं च पथिष्वेवार्पितं मम ।
प्रह्लाद त्वं तु मे तथ्यं प्रश्नं प्रब्रूहि पृच्छतः ।
किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांस उताहो स्विद् विरोचनः ॥27॥

सुधन्वा बोला—प्रह्लाद! जल और मधुपर्क तो मुझे मार्ग में ही मिल गया है। तुम तो जो मैं पूछ रहा हूँ, उस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर दो। ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं अथवा विरोचन?

प्रह्लाद उवाच

पुत्र एको मम ब्रह्मंस्त्वं च साक्षादिहास्थितः ।
तयोर्विवदतोः प्रश्नं कथमस्मद्विधो वदेत् ॥28॥

प्रह्लाद बोले—ब्राह्मण! मेरे एक ही पुत्र है और इधर तुम स्वयं उपस्थित हो, भला, तुम दोनों के विवाद में मेरे जैसा मनुष्य कैसे निर्णय दे सकता है!

सुधन्वोवाच

गां प्रदद्यात्स्वौरसाय यद्वान्यत् स्यात् प्रियं धनम् ।
द्वयोर्विवदतोस्तथ्यं वाच्यं च मतिमंस्त्वया ॥29॥

सुधन्वा बोला—मतिमन्! तुम्हारे पास गौ तथा दूसरा जो कुछ भी प्रिय धन हो, वह सब अपने औरस पुत्र विरोचन को दे दो, परंतु हम दोनों के विवाद में तो तुम्हें ठीक-ठीक उत्तर देना ही चाहिए।

प्रह्लाद उवाच

अथ यो नैव प्रब्रूयात् सत्यं वा यदि वानृतम् ।

एतत् सुधन्वन् पृच्छामि दुर्विवक्ता स्म किं वसेत् ॥30॥

प्रह्लाद ने कहा—सुधन्वन्! अब मैं तुमसे यह बात पूछता हूँ—जो सत्य न बोले अथवा असत्य निर्णय करे, ऐसे दुष्ट वक्ता की क्या स्थिति होती है?

सुधन्वोवाच

यां रात्रिमधिविन्ना स्त्री यां चैवाक्षपराजितः ।

यां च भाराभितप्ताङ्गो दुर्विवक्ता स्म तां वसेत् ॥31॥

सुधन्वा बोला—सौतवाली स्त्री, जूए में हारे हुए जुआरी और भार ढोने से व्यथित शरीरवाले मनुष्य की रात में जो स्थिति होती है, वही स्थिति उल्टा न्याय देनेवाले वक्ता की भी होती है।

नगरे प्रतिरुद्धः सन् बहिद्वारि बुभुक्षितः ।

अमित्रान् भूयसः पश्येद् यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ॥32॥

जो उल्टा निर्णय देता है, वह राजा नगर में कैद होकर बाहरी दरवाजे पर भूख का कष्ट उठाता हुआ बहुत-से शत्रुओं को देखता है।

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।

शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥33॥



पशु के लिए झूठ बोलने से पांच पीढ़ियों को, गौ के लिए झूठ बोलने पर दस पीढ़ियों को, घोड़े के लिए असत्य भाषण करने पर सौ पीढ़ियों को और मनुष्य के लिए झूठ बोलने पर एक हजार पीढ़ियों को मनुष्य नरक में धकेलता है।

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन्
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदेः ॥34॥

सोने के लिए झूठ बोलनेवाला भूत और भविष्य सभी पीढ़ियों को नरक में गिराता है। पृथ्वी तथा स्त्री के लिए झूठ कहनेवाला तो अपना सर्वनाश ही कर लेता है, इसलिए तुम भूमि या स्त्री के लिए कभी झूठ न बोलना।

प्रह्लाद उवाच

मत्तः श्रेयानङ्गिरा वै सुधन्वा त्वद्विरोचन ।
मातास्य श्रेयसी मातुस्तस्मात्त्वं तेन वै जितः ॥35॥

प्रह्लाद ने कहा—विरोचन! सुधन्वा के पिता अंगिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं, सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ हैं, इसकी माता भी तुम्हारी माता से श्रेष्ठ है, अतः तुम आज सुधन्वा से हार गये।

विरोचन सुधन्वायं प्राणानामीश्वरस्तव
सुधन्वन् पुनरिच्छामि त्वया दत्तं विरोचनम् ॥36॥

विरोचन! अब सुधन्वा तुम्हारे प्राणों का मालिक है। सुधन्वन्! अब यदि तुम दे दो तो मैं विरोचन को पाना चाहता हूँ।

सुधन्वोवाच

यद्धर्ममवृणीथास्त्वं न कामादनृतं वदीः ।
पुनर्ददामि ते पुत्रं तस्मात् प्रह्लाद दुर्लभम् ॥37॥

सुधन्वा बोला—प्रह्लाद! तुमने धर्म को ही स्वीकार किया है, स्वार्थवश नहीं कहा है, इसलिए अब इस दुर्लभ पुत्र को फिर तुम्हें दे रहा हूँ।

एष प्रह्लाद पुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः ।
पादप्रक्षालनं कुर्यात् कुमार्याः सन्निधौ मम ॥38॥

प्रह्लाद ! तुम्हारे इस पुत्र विरोचन को मैंने पुनः तुम्हें दे दिया है किंतु अब यह कुमारी केशिनी के निकट चलकर मेरा पैर धोए।

विदुर उवाच

तस्माद् राजेन्द्र भूम्यर्थे नानृतं वक्तुमर्हसि ।

मा गमः ससुतामात्यो नाशं पुत्रार्थमब्रुवन् ॥३९॥

विदुरजी कहते हैं—इसलिए राजेन्द्र ! आप पृथ्वी के लिए झूठ न बोलें। बेटे के स्वार्थवश सच्ची बात न कहकर पुत्र और मन्त्रियों के साथ विनाश के मुख में न जाएं।

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।

यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम् ॥४०॥

देवता लोग चरवाहों की तरह झंडा लेकर पहरा नहीं देते। वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे उत्तम बुद्धि से युक्त कर देते हैं।

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।

तथा तथास्य सर्वार्थाः सिद्ध्यन्ते नात्र संशयः ॥४१॥

मनुष्य जैसे-जैसे कल्याण में लगता है, वैसे-ही-वैसे उसके सारे अभीष्ट सिद्ध होते हैं—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

नैनं छन्दांसि वृजिनात् तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम् ।

नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले ॥४२॥

कपटपूर्ण व्यवहार करनेवाले मायावी को वेद पापों से मुक्त नहीं करते, किंतु जैसे पंख निकल आने पर चिड़ियों के बच्चे घोंसला छोड़ देते हैं, उसी प्रकार वेद भी अन्तकाल में उसे त्याग देते हैं।

मद्यपानं कलहं पूगवैरं भार्यापत्योरन्तरं ज्ञातिभेदम् ।

राजद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं वर्ज्यान्याहुर्यश्च पन्थाः प्रदुष्टः ॥४३॥

शराब पीना, कलह, समूह के साथ वैर, पति-पत्नी से भेद पैदा करना, कुटुम्बवालों में भेदबुद्धि उत्पन्न करना, राजा के साथ द्वेष, स्त्री और पुरुष में विवाद और बुरे रास्ते—ये सब त्याग देने योग्य बताये गये हैं।

सामुद्रिकं वणिजं चोरपूर्वं शलाकधूर्तं च चिकित्सकं च ।

अरिं च मित्रं च कुशीलवं च नैतान् साक्ष्ये त्वधिकुर्वीत सप्त ॥४४॥

हस्तरेखा देखनेवाला, चोरी करके व्यापार करनेवाला, जुआरी, वैद्य, शत्रु, मित्र और नर्तक—इन सातों को कभी भी गवाह नहीं बनाना चाहिए।

मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ।

एतानि चत्वार्यभयङ्कराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि ॥45॥

आदर के साथ अग्निहोत्र, आदरपूर्वक मौन का पालन, आदरपूर्वक स्वाध्याय और आदर के साथ यज्ञ का अनुष्ठान—ये चार कर्म भय को दूर करनेवाले हैं, किंतु वे ही यदि ठीक तरह से सम्पादित न हों तो भय प्रदान करनेवाले होते हैं ।

अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ।

पर्वकारश्च सूची च मित्रधुक् पारदारिकः ॥46॥

भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात् पानपो द्विजः ।

अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः ॥47॥

सुवप्रग्रहणो ब्रात्यः कीनाशश्चात्मवानपि

रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात् सर्वे ब्रह्महभिः समाः ॥48॥



घर में आग लगानेवाला, विष देनेवाला, जारज संतान की कमाई खानेवाला, सोमरस बेचनेवाला, शस्त्र बनानेवाला, चुगली करनेवाला, मित्रद्रोही, परस्त्रीलम्पट, गर्भ की हत्या करनेवाला, गुरुस्त्रीगामी, ब्राह्मण होकर शराब

पीनेवाला, अधिक तीखे स्वभाववाला, कौए की तरह कांय-कांय करनेवाला, नास्तिक, वेद की निन्दा करनेवाला, घूसखोर, पतित, क्रूर तथा शक्ति रहते हुए रक्षा के लिए प्रार्थना करने पर भी जो हिंसा करता है—ये सब के सब ब्रह्म हत्यारों के समान हैं।

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं वृतेन भद्रो व्यवहारेण साधुः ।

शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः कृच्छ्रेष्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च ॥49॥

जलती हुई आग से सोने की पहचान होती है, सदाचार से सत्पुरुष की, व्यवहार से साधु की, भय आने पर शूर की, आर्थिक कठिनाई में धीर की और कठिन आपत्ति में शत्रु एवं मित्र की परीक्षा होती है।

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया ।

क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा हियं कामः सर्वमेवाभिमानः ॥50॥

बुढ़ापा सुंदर रूप को, आशा धीरता को, मृत्यु प्राणों को, दोष देखने की आदत धर्माचरण को, क्रोध लक्ष्मी को, नीच पुरुषों की सेवा सत्त्वभाव को, काम लज्जा को और अभिमान सर्वस्व को नष्ट कर देता है।

श्रीर्मङ्गलात् प्रभवति प्रागल्भ्यात् सम्प्रवर्धते ।

दाक्ष्यात् कुरुते मूलं संयमात् प्रतितिष्ठति ॥51॥

शुभ कर्मों से लक्ष्मी की उत्पत्ति होती है, प्रागल्भता से वह बढ़ती है, चतुरता से जड़ जमा लेती है और संयम से सुरक्षित रहती है।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।

पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥52॥

आठ गुण पुरुष की शोभा बढ़ाते हैं—बुद्धि, कुलीनता, दम, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, बहुत न बोलना, यथाशक्ति दान देना और कृतज्ञ होना।

एतान् गुणांस्तात महानुभावानेको गुणः संश्रयते प्रसह्य ।

राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान्गुणानेष गुणो विभाति ॥53॥

तात! एक गुण ऐसा है, जो इन सभी महत्त्वपूर्ण गुणों पर हठात् अधिकार जमा लेता है। जिस समय राजा किसी मनुष्य का सत्कार करता है, उस समय यह एक ही गुण (राजसम्मान) सभी गुणों से बढ़कर शोभा पाता है।

अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि ।

चत्वार्येषामन्ववेतानि सद्भिश्चत्वारि चैषामनुयान्ति सन्तः ॥54॥

राजन्! मनुष्यलोक में ये आठ गुण स्वर्गलोक का दर्शन करानेवाले हैं, इनमें से चार तो संतों के साथ नित्य सम्बद्ध हैं—उनमें सदा विद्यमान रहते हैं और चार का सज्जन पुरुष अनुसरण करते हैं।

यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः ।

दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः ॥55॥

यज्ञ, दान अध्ययन और तप—ये चार सज्जनों के साथ नित्य सम्बद्ध हैं और इन्द्रियनिग्रह, सत्य, सरलता तथा कोमलता—इन चारों का संत लोग अनुसरण करते हैं।

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा ।

अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः समृतः ॥56॥

यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और अलोभ—ये धर्म के आठ प्रकार के मार्ग बताये गये हैं।

तत्र पूर्वचतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते ।

उत्तरश्च चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति ॥57॥

इनमें से पहले चारों का दम्भ के लिए भी सेवन किया जा सकता है, परंतु अन्तिम चार तो जो महात्मा नहीं हैं, उनमें रह नहीं सकते।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम् ।

नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥58॥

जिस सभा में बड़े-बूढ़े नहीं, वह सभा नहीं, जो धर्म की बात न कहें, वे बूढ़े नहीं, जिसमें सत्य नहीं, वह धर्म नहीं और जो कपट से पूर्ण हो, वह सत्य नहीं है।

सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम् ।

शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशमे स्वर्गयोनयः ॥59॥

सत्य, विनय का भाव, शास्त्रज्ञान, विद्या, कुलीनता, शील, बल, धन, शूरता और चमत्कारपूर्ण बात कहना—ये दस स्वर्ग के साधन हैं।

पापं कुर्वन् पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम् ।

पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते ॥60॥

पाप-कीर्तिवाला मनुष्य पापाचरण करता हुआ पापरूप फल को ही प्राप्त करता है और पुण्यकर्मा मनुष्य पुण्य करता हुआ अत्यन्त पुण्यफल का ही

उपभोग करता है।

तस्मात् पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः ।

पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥61॥

इसलिए प्रशंसित व्रत का आचरण करनेवाले पुरुष को पाप नहीं करना चाहिए, क्योंकि बारंबार किया हुआ पाप बुद्धि को नष्ट कर देता है।

नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः ।

पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥62॥

जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मनुष्य सदा पाप ही करता रहता है। इसी प्रकार बारंबार किया हुआ पुण्य बुद्धि को बढ़ाता है।

वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः ।

पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यस्थानं स्म गच्छति ।

तस्मात् पुण्यं निषेवेत पुरुषः सुसमाहितः ॥63॥

जिसकी बुद्धि बढ़ जाती है, वह मनुष्य सदा पुण्य ही करता है। इस प्रकार पुण्यकर्मा मनुष्य पुण्य करता हुआ पुण्यलोक को ही जाता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह सदा एकाग्रचित्त होकर पुण्य का ही सेवन करे।

असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छतः ।

स कृच्छं महादानोति न चिरात् पापमाचरन् ॥64॥

गुणों में दोष देखनेवाला, मर्म पर आघात करनेवाला, निर्दयी, शत्रुता करनेवाला और शठ मनुष्य पाप का आचरण करता हुआ शीघ्र ही महान् कष्ट को प्राप्त होता है।

अनसूयः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन् सदा ।

न कृच्छं महादानोति सर्वत्र च विरोचते ॥65॥

दोषदृष्टि से रहित शुद्ध बुद्धिवाला पुरुष सदा शुभ कर्मों का अनुष्ठान करता हुआ महान् सुख को प्राप्त होता है और सर्वत्र उसका सम्मान होता है।

प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः ।

प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम् ॥66॥

जो बुद्धिमान् पुरुषों से सदबुद्धि प्राप्त करता है, वही पण्डित है, क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष ही धर्म और अर्थ को प्राप्त कर अनायास ही अपनी उन्नति करने में

समर्थ होता है ।

दिवसेनैव तत् कुर्याद् येन रात्रौ सुखं वसेत् ।

अष्टमासेन तत् कुर्याद् येन वर्षाः सुखं वसेत् ॥67॥

दिन-भर में ही वह कार्य कर ले, जिससे रात में सुख से रह सके और आठ महीनों में वह कार्य कर ले, जिससे वर्षा के चार महीने सुख से व्यतीत कर सके ।

पूर्वे वयसि तत् कुर्याद् येन वृद्धः सुखं वसेत् ।

यावज्जीवेन तत् कुर्याद् येन प्रेत्य सुखं वसेत् ॥68॥

पहली अवस्था में वह काम करे, जिससे वृद्धावस्था में सुखपूर्वक रह सके और जीवन-भर वह कार्य करे, जिससे मरने के बाद भी सुख से रह सके ।

जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्या च गतयौवनाम् ।

शूरं विजितसंग्रामं गतपारं तपस्विनम् ॥69॥

सज्जन पुरुष पच जाने पर अन्न की, निष्कलंक जवानी बीत जाने पर स्त्री की, संग्राम जीत लेने पर शूर की और तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाने पर तपस्वी की प्रशंसा करते हैं ।

धनेनाधर्मलब्धेन

यच्छिद्रमपिधीयते ।

असंवृतं तद्

भवति

ततोऽन्यदवदीर्यते ॥70॥

अधर्म से प्राप्त हुए धन के द्वारा जो दोष छिपाया जाता है, वह तो छिपता नहीं, उससे भिन्न और नया दोष प्रकट हो जाता है ।

गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम् ।

अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥71॥

अपने मन और इन्द्रियों को वश में करनेवाले शिष्यों के शासक गुरु हैं, दुष्टों के शासक राजा हैं और छिपे-छिपे पाप करनेवालों के शासक सूर्यपुत्र यमराज हैं ।

ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम् ।

प्रभावो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च ॥72॥

ऋषि, नदी, महात्माओं के कुल तथा स्त्रियों के दुश्चरित्रता का मूल नहीं जाना जा सकता ।

द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी ।

क्षत्रियः शीलभाग् राजंश्चिरं पालयते महीम् ॥73॥

राजन्! ब्राह्मणों की सेवा-पूजा में संलग्न रहनेवाला दाता, कुटुम्बीजनों के प्रति कोमलता का बर्ताव करनेवाला और शीलवान् राजा चिरकाल तक पृथ्वी का पालन करता है।

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः ।

शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥76॥

शूर, विद्वान् और सेवाधर्म को जाननेवाले—ये तीन प्रकार के मनुष्य पृथ्वी से सुवर्णरूपी पुष्प का संचय करते हैं।

बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत ।

तानि जंघाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च ॥77॥

भारत! बुद्धि से विचारकर किये हुए कर्म श्रेष्ठ होते हैं, बाहुबल से किये जानेवाले कर्म मध्यम श्रेणी के हैं, जिज्ञासा से होनेवाले कार्य अधम हैं और भार ढोने का काम बहुत अधम है।

दुर्योधनेऽथ शकुनौ मूढे दुःशासने तथा ।

कर्णे चैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥78॥

राजन्! अब आप दुर्योधन, शकुनि, मूर्ख दुःशासन तथा कर्ण पर राज्य का भार रखकर ऐश्वर्य कैसे चाहते हैं?

सर्वैर्गुणैरुपेतास्तु पाण्डवा भरतर्षभ ।

पितृवत् त्वयि वर्तन्ते तेषु वर्तस्व पुत्रवत् ॥79॥

भरतश्रेष्ठ! पाण्डव तो सभी उत्तम गुणों से सम्पन्न हैं और आपमें पिता का-सा भाव रखकर बर्ताव करते हैं, आप भी उन पर पुत्रभाव रखकर उचित बर्ताव कीजिए।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि

विदुरनीतिवाक्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

चौथा अध्याय

सार संक्षेप

- दत्तात्रेय और साध्यों का संवाद—साध्यों का हंसरूप से विचरने दत्तात्रेयजी से उपदेश देने का अनुरोध ।
- हंसरूप से दत्तात्रेयजी का उपदेश—धृति, शम और सत्यधर्म के अनुसरण की आवश्यकता, प्रिय और अप्रिय को आत्मवत् समझने की प्रेरणा ।
- क्षमाशील का प्रभाव, दूसरों को गाली देने और कटुवचन कहने आदि का निषेध, कटुवचन और कटुवादी की निन्दा ।
- गाली और कटु वचन के सह लेने से पुण्य की पुष्टि, जैसा संग वैसा रंग तथा देवता किसके आगमन की बाट जोहते हैं, इत्यादि बातों का विवेचन ।
- वाणी की चार विशेषताएँ, जैसा साथ वैसा भाव, निवृत्ति से मुक्ति और दुःख का अभाव तथा समता की प्रशंसा ।
- उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्यों की पहचान तथा अधम पुरुषों की सेवा को त्यागने की आज्ञा ।
- धृतराष्ट्र का विदुर से महाकुलीन पुरुषों के लक्षण पूछना और विदुर के द्वारा उनके प्रश्नों का उत्तर ।
- किन-किन कर्मों से उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं—इसका प्रतिपादन ।
- सदाचार ही कुलीनता का मूल है, सदाचार के नाश से सब कुछ नष्ट हो जाता है ।
- राजकुल तथा राजसभा में किन लोगों का होना अभिष्ट नहीं है ।
- अतिथि-सत्कार के लिए सर्वसुलभ वस्तुएँ तथा उनका सदुपयोग ।
- महाकुलीन पुरुषों की प्रशंसा, उत्तम मित्र के लक्षण ।

- चंचलचित्त पुरुष के पास न तो मित्र ठहरते हैं और न उसे अर्थ की प्राप्ति होती है—इसका प्रतिपादन ।
- दुष्ट पुरुषों के स्वभाव, कृतघ्नों की निन्दा ।
- मित्रों के सत्कार की आवश्यकता तथा संताप और शोक से हानि ।
- हर्ष और शोक त्याज्य है ।
- इन्द्रियों की विषयपरायणता से बुद्धि का हास ।
- धृतराष्ट्र के उद्वेगपूर्ण वचन और उद्वेगशून्य शान्तपद की जिज्ञासा ।
- विदुरजी का धृतराष्ट्र को शान्ति और सुख के उपाय बताना ।
- आपस में वैर विरोध रखनेवाले लोगों को सुख-शान्ति की दुर्लभता ।
- जाति-बन्धुओं से सम्भावित भय, सामूहिक शक्ति की प्रबलता, आपस की फूट से दुःख और एकता से सुख ।
- ब्राह्मणों, स्त्रियों, जाति-भाइयों और गौओं पर बल दिखाने से पतन ।
- संघ शक्ति से प्रशंसा ।
- कौन-कौन अवध्य हैं और मनुष्य में क्या गुण हैं ।
- क्रोध को पीने से शान्ति, रोगी को सुख का अभाव ।
- धृतराष्ट्र को उलाहना देते हुए विदुर का उनसे कौरव-पाण्डव में मेल एवं सन्धि कराने का आग्रह ।

चौथा अध्याय विस्तार से

यादृशैः सन्निविशते यादृशांश्चोपसेवते ।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः ॥



मनुष्य जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसे लोगों की
सेवा करता है और जैसा होना चाहता है,
वैसा ही हो जाता है ।

विदुर उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं

पुरातनम् ।

आत्रेयस्य च संवादं साध्यानां चेति नः श्रुतम् ॥१॥

विदुरजी कहते हैं—इस विषय में दत्तात्रेय और साध्य देवताओं के संवाद रूप इस प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं, यह मेरा भी सुना हुआ है ।

चरन्तं हंसरूपेण महर्षिं संशितव्रतम् ।

साध्या देवा महाप्राज्ञं पर्यपृच्छन्त वै पुरा ॥२॥

प्राचीन काल की बात है, उत्तम व्रतवाले महा बुद्धिमान् महर्षि दत्तात्रेयजी हंस (परमहंस) रूप से विचर रहे थे, उस समय साध्य देवताओं ने उनसे पूछा ।

साध्या ऊचुः

साध्या देवा वयमेते महर्षे दृष्ट्वा भवन्तं न शक्नुमोऽनुमातुम् ।

श्रुतेन धीरो बुद्धिमांस्त्वं मतो नः काव्यां वाचं वक्तुमर्हस्युदाराम् ॥३॥

साध्य बोले—महर्षे! हम सब लोग साध्य देवता हैं, आपको केवल देखकर हम आपके विषय में कुछ अनुमान नहीं कर सकते । हमें तो आप शास्त्र ज्ञान से युक्त, धीर एवं बुद्धिमान् जान पड़ते हैं, अतः हम लोगों को विद्वत्तापूर्ण अपनी उदारवाणी सुनाने की कृपा करें ।

हंस उवाच

एतत् कार्यममराः संश्रुतं मे धृतिः शमः सत्यधर्मानुवृत्तिः ।

ग्रन्थिं विनीय हृदयस्य सर्वं प्रियाप्रिये चात्मसमं नयीत ॥४॥

हंस ने कहा—देवताओ! मैंने सुना है कि धैर्य-धारण, मनोनिग्रह तथा सत्य-धर्मों का पालन ही कर्तव्य है, इसके द्वारा पुरुष को चाहिए कि हृदय की सारी गांठ खोलकर प्रिय और अप्रिय को अपने आत्मा के समान समझे ।

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः ।

आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥५॥

दूसरों से गाली सुनकर भी स्वयं उन्हें गाली न दे । क्षमा करनेवाले का रोका हुआ क्रोध ही गाली देनेवाले को जला डालता है और उसके पुण्य को भी ले लेता है ।

नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य मित्रद्रोही नोत नीचोपसेवी ।

न चाभिमानी न च हीनवृत्तो रक्षां वाचं रुषतीं वर्जयीत ॥६॥

दूसरे को न तो गाली दे और न उसका अपमान करे, मित्रों से द्रोह तथा नीच पुरुषों की सेवा न करे, सदाचार से हीन एवं अभिमानी न हो, रूखी तथा रोषभरी वाणी का परित्याग करे।

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथासून् रूक्षा वाचो निर्दहन्तीह पुंसाम् ।

तस्माद् वाचमुशतीमुग्ररूपां धर्मारामो नित्यशो वर्जयीत ॥7॥

इस जगत् में रूखी बातें मनुष्यों के मर्मस्थान, हड्डी, हृदय तथा प्राणों को दग्ध करती रहती हैं, इसलिए धर्मानुरागी पुरुष जलानेवाली रूखी बातों का सदा के लिए परित्याग कर दे।

अरुन्तुदं परुषं रूक्षवाचं वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान् ।

विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निबद्धां निर्व्रतिं वै वहन्तम् ॥8॥

जिसकी वाणी रूखी और स्वभाव कठोर है, जो मर्म पर आघात करता और वाग्बाणों से मनुष्यों को पीड़ा पहुंचाता है, उसे ऐसा समझना चाहिए कि वह मनुष्यों में महादरिद्र है और वह अपने मुख में दरिद्रता अथवा मौत को बांधे हुए ढो रहा है।

परश्चेदेनमभिविध्येत वाणैर्भृशं सुतीक्ष्णैरनलाकदीप्तैः ।

स विध्यमानोऽप्यतिदह्यमानो विद्यात् कविः सुकृतं मे दधाति ॥9॥

यदि दूसरा कोई इस मनुष्य को अग्नि और सूर्य के समान दग्ध करनेवाले तीखे वाग्बाणों से बहुत चोट पहुंचाए तो वह विद्वान् पुरुष चोट खाकर अत्यन्त वेदना सहते हुए भी ऐसा समझे कि वह मेरे पुण्यों को पुष्ट कर रहा है।

यदि सन्तं सेवते यद्यसन्तं तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव ।

वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमभ्युपैति ॥10॥

जैसे वस्त्र जिस रंग में रंगा जाय वैसा ही हो जाता है, इसी प्रकार यदि कोई सज्जन, असज्जन, तपस्वी अथवा चोर की सेवा करता है तो वह उन्हीं के वश में हो जाता है—उस पर उन्हीं का रंग चढ़ जाता है।

अतिवादं न प्रवदेन् वादयेद् योऽनाहतः प्रतिहन्यान् घातयेत् ।

हन्तुं च यो नेच्छति पापकं वै तस्मै देवाः स्पृहयन्त्यागताय ॥11॥

जो स्वयं किसी के प्रति बुरी बात नहीं कहता, दूसरों से भी नहीं कहलाता, बिना मार खाये स्वयं न तो किसी को मारता है और न दूसरों से ही मरवाता है,

मार खाकर भी अपराधी को जो मारना नहीं चाहता, देवता भी उसके आगमन की बाट जोहते रहते हैं।

अव्याहतं व्याहताच्छ्रेय आहुः सत्यं वदेद् व्याहतं तद् द्वितीयम् ।

प्रियं वदेद् व्याहतं तत् तृतीयं धर्मं वदेद् व्याहतं तच्चतुर्थम् ॥12॥

बोलने से न बोलना अच्छा बताया गया है, किंतु सत्य बोलना वाणी की दूसरी विशेषता है, यानी मौन की अपेक्षा भी दूना लाभ-प्रद है। सत्य भी यदि प्रिय बोला जाय तो तीसरी विशेषता है और वह भी यदि धर्मसम्मत कहा जाय तो वह वचन की चौथी विशेषता है।

यादृशैः सन्निविशते यादृशांश्चोपसेवते ।

यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः ॥13॥

मनुष्य जैसे लोगों के साथ रहता है, जैसे लोगों की सेवा करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है।

यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते ।

निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि ॥14॥

मनुष्य जिन-जिन विषयों से मन को हटाता जाता है, उनसे उसकी मुक्ति होती जाती है। इस प्रकार यदि सब ओर से निवृत्ति हो जाए तो उसे लेशमात्र दुःख का भी कभी अनुभव नहीं होता।

न जीयते चानुजिगीषतेऽन्यान् वैरकृच्चाप्रतिघातकश्च ।

निन्दाप्रशंसासु समस्वभावो न शोचते हृष्यति नैव चायम् ॥15॥

जो न तो स्वयं किसी से जीता जाता, न दूसरों को जीतने की इच्छा करता है, न किसी के साथ वैर करता और न दूसरों को चोट पहुंचाना चाहता है, जो निन्दा और प्रशंसा में समान भाव रखता है, वह हर्ष-शोक से परे हो जाता है।

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः ।

सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः ॥16॥

जो सबका कल्याण चाहता है, किसी के अकल्याण की बात मन में भी नहीं लाता, जो सत्यवादी, कोमल और जितेन्द्रिय है, वह उत्तम पुरुष माना गया है।

नानर्थकं सान्त्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च ।

रन्ध्रं परस्य जानाति यः स मध्यमपूरुषः ॥17॥

जो झूठी सान्त्वना नहीं देता, देने की प्रतिज्ञा करके दे ही डालता है, दूसरों के दोषों को जानता है, वह मध्यम श्रेणी का पुरुष है।

दुःशासनस्तूपहतोऽभिशास्तो नावर्तते मन्युवशात् कृतघ्नः ।

न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा कलाश्वेता अधमस्येह पुंसः ॥18॥

देखिए, दुःशासन गन्धर्वों द्वारा पीटा गया, अस्त्र-शस्त्रों से विदीर्ण किया गया, (उस समय पाण्डवों ने उसकी रक्षा की) तो भी वह कृतघ्न क्रोध के वशीभूत हो पाण्डवों की बुराई से मुंह नहीं मोड़ता। वह दुरात्मा किसी का भी मित्र नहीं है। ऐसी चित्तवृत्ति अधम पुरुषों की ही हुआ करती है।

न श्रद्धधाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्मशङ्कितः ।

निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः ॥19॥

जो अपने ही ऊपर संदेह होने के कारण दूसरों से भी कल्याण होने का विश्वास नहीं करता, मित्रों को भी दूर रखता है, अवश्य ही वह अधम पुरुष है।

उत्तमानेव सेवेत प्राप्तकाले तु मध्यमान् ।

अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद् भूतिमात्मनः ॥20॥

जो अपनी उन्नति चाहता है, वह उत्तम पुरुषों की ही सेवा करे, समय आ पड़ने पर मध्यम पुरुषों की भी सेवा कर ले, परंतु अधम पुरुषों की सेवा कदापि न करे।

प्राप्नोति वै वित्तमसद्बलेन नित्योत्थानात् प्रज्ञया पौरुषेण ।

न त्वेव सम्यग् लभते प्रशंसां न वृत्तमाप्नोति महाकुलानाम् ॥21॥

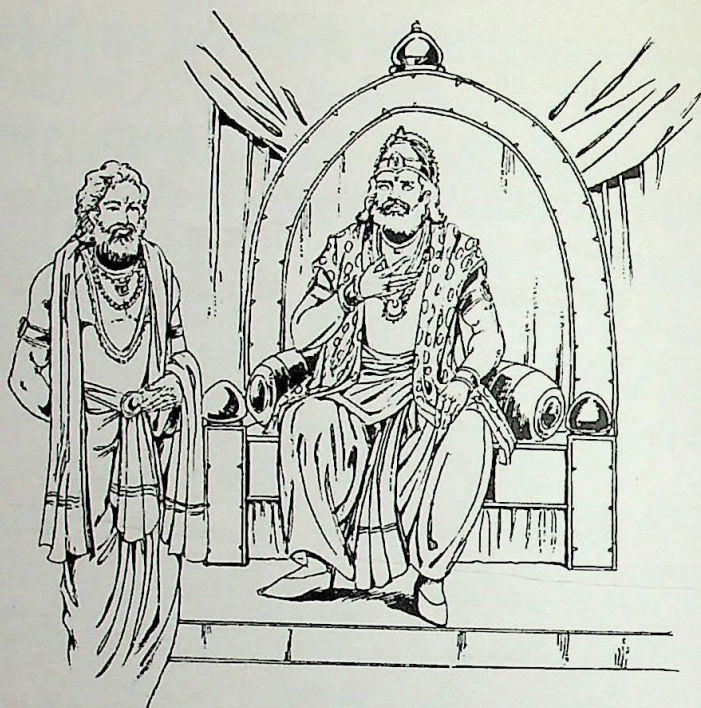
मनुष्य दुष्ट पुरुषों के बल से, निरन्तर के उद्योग से, बुद्धि से तथा पुरुषार्थ से धन भले ही प्राप्त कर ले, परंतु इससे उत्तम कुलीन पुरुष के सम्मान और सदाचार को पूर्णरूप से कदापि नहीं प्राप्त कर सकता।

धृतराष्ट्र उवाच

महाकुलेभ्यः स्पृहयन्ति देवा धर्मार्थनित्याश्च बहुश्रुताश्च ।

पृच्छामि त्वां विदुर प्रश्नमेतं भवन्ति वै कानि महाकुलानि ॥22॥

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर! धर्म और अर्थ के नित्य ज्ञाता एवं बहुश्रुत देवता भी उत्तम कुल में उत्पन्न पुरुषों की इच्छा करते हैं। इसलिए मैं तुमसे यह प्रश्न करता हूँ कि महान् (उत्तम) कुल कौन हैं?



विदुर उवाच

तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः पुण्या विवाहाः सततान्नदानम् ।

येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि ॥23॥

विदुरजी बोले—जिनमें तप, इन्द्रिय संयम, वेदों का स्वाध्याय, यज्ञ, पवित्र विवाह, सदा अन्नदान और सदाचार—ये सात गुण वर्तमान हैं, उन्हें महान् (उत्तम) कुल कहते हैं।

येषां हि वृत्तं व्यथते न योनिश्चितप्रसादेन चरन्ति धर्मम् ।

ये कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि ॥24॥

जिनका सदाचार शिथिल नहीं होता, जो अपने दोषों से माता-पिता को कष्ट नहीं पहुंचाते, प्रसन्न चित्त से धर्म का आचरण करते हैं तथा असत्य का परित्याग कर अपने कुल की विशेष कीर्ति चाहते हैं, वे ही महान् कुल हैं।

अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च ।

कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च ॥25॥

यज्ञ न होने से, निन्दित कुल में विवाह करने से, वेद का त्याग और धर्म का उल्लंघन करने से उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं।

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥26॥

देवताओं के धन का नाश, ब्राह्मण के धन का अपहरण और ब्राह्मणों की मर्यादा का उल्लंघन करने से उत्तम कुल भी अधम हो जाते हैं ।

ब्राह्मणानां परिभवात् परिवादाच्च भारत ।
कुलान्यकुलतां यान्ति न्यासापहरणेन च ॥27॥

भारत! ब्राह्मणों के अनादर और निन्दा से तथा धरोहर रखी हुई वस्तु को छिपा लेने से अच्छे कुल भी निन्दनीय हो जाते हैं ।

कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः ।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥28॥

गौओं, मनुष्यों और धन से सम्पन्न होकर भी जो कुल सदाचार से हीन हैं, वे अच्छे कुलों की गणना में नहीं आ सकते ।

वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि ।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद् यशः ॥29॥

थोड़े धनवाले कुल भी यदि सदाचार से सम्पन्न हैं, तो वे अच्छे कुलों की गणना में आ जाते हैं और महान् यश प्राप्त करते हैं ।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥30॥

सदाचार की रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिए, धन तो आता और जाता रहता है । धन क्षीण हो जाने पर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता, किंतु जो सदाचार से भ्रष्ट हो गया, उसे तो नष्ट ही समझना चाहिए ।

गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धया ।
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥31॥

जो कुल सदाचार से हीन हैं, वे गौओं, पशुओं, घोड़ों तथा हरी-भरी खेती से सम्पन्न होने पर भी उन्नति नहीं कर पाते ।

मा नः कुले वैरकृत् कश्चिदस्तु राजामात्यो मा परस्वापहारी ।
मित्रद्रोही नैष्कृतिकोऽनृती वा पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः ॥32॥

हमारे कुल में कोई वैर करनेवाला न हो, दूसरों के धन का अपहरण

करनेवाला राजा अथवा मन्त्री न हो और मित्रब्रोही, कपटी तथा असत्यवादी न हो। इसी प्रकार माता, पिता, देवता एवं अतिथियों को भोजन कराने से पहले भोजन करनेवाला भी न हो।

यश्च नो ब्राह्मणान् हन्याद्यश्च नो ब्राह्मणान् द्विषेत् ।

न नः स समितिं गच्छेद्यश्च नो निर्वपेत् कृषिम् ॥33॥

हम लोगों में से जो ब्राह्मणों की हत्या करे, ब्राह्मणों के साथ द्वेष करे तथा पितरों को पिण्डदान एवं तर्पण न करे, वह हमारी सभा में न जाए।

तृष्णानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूत्रता ।

सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥34॥

तृण का आसन, पृथ्वी, जल और चौथी मीठी वाणी सज्जनों के घर में इन चार चीजों की कभी कमी नहीं होती।

श्रद्धया परया राजन्नुपनीतानि सत्कृतिम् ।

प्रवृत्तानि महाप्राज्ञ धर्मिणां पुण्यकर्मिणाम् ॥35॥

महाप्राज्ञ राजन्! पुण्यकर्म करनेवाले धर्मात्मा पुरुषों के यहां ये तृण आदि वस्तुएं बड़ी श्रद्धा के साथ सत्कार के लिए उपस्थित की जाती हैं।

सूक्ष्मोऽपि भारं नृपते स्यन्दनो वै शक्तो वोढुं न तथान्ये महीजाः ।

एवं युक्ता भारसहा भवन्ति महाकुलीना न तथान्ये मनुष्याः ॥36॥

नृपवर! छोटा-सा भी रथ भार ढो सकता है, किंतु दूसरे काठ बड़े-बड़े होने पर भी ऐसा नहीं कर सकते। इसी प्रकार उत्तम कुल में उत्पन्न उत्साही पुरुष भार सह सकते हैं, दूसरे मनुष्य वैसे नहीं होते।

न तन्मित्रं यस्य कोपाद् विभेति यद् वा मित्रं शङ्कितेनोपचर्यम् ।

यस्मिन् मित्रे पितरीवाश्वसीत तद् वै मित्रं सङ्गतानीतराणि ॥37॥

जिसके कोप से भयभीत होना पड़े तथा शंकित होकर जिसकी सेवा की जाय, वह मित्र नहीं है। मित्र तो वही है, जिस पर पिता की भांति विश्वास किया जा सके, दूसरे तो संगी मात्र हैं।

य कश्चिदप्यसम्बद्धो मित्रभावेन वर्तते ।

स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत् परायणम् ॥38॥

पहले से कोई सम्बन्ध न होने पर भी जो मित्रता का बर्ताव करे, वही बन्धु,

वही मित्र, वही सहारा और वही आश्रय है ।

चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः ।
पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसंग्रहः ॥39॥

जिसका चित्त चंचल है, जो वृद्धों की सेवा नहीं करता, उस अनिश्चितमति पुरुष के लिए मित्रों का संग्रह स्थायी नहीं होता ।

चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम् ।
अर्थाः समभिवर्तन्ते हंसा शुष्कं सरो यथा ॥40॥

जैसे हंस सूखे सरोवर के आस-पास ही मंडराकर रह जाते हैं, भीतर नहीं प्रवेश करते, उसी प्रकार जिसका चित्त चंचल है, जो अज्ञानी और इन्द्रियों का गुलाम है, उसे अर्थ की प्राप्ति नहीं होती ।

अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः ।
शीलमेतदशाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा ॥41॥

दुष्ट पुरुषों का स्वभाव मेघ के समान चंचल होता है, वे सहसा क्रोध कर बैठते हैं और अकारण ही प्रसन्न हो जाते हैं ।

सत्कृताश्च श्रुतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये ।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥42॥

जो मित्रों से सत्कार पाकर और उनकी सहायता से कृतकार्य होकर भी उनके नहीं होते, ऐसे कृतघ्नों के मरने पर उनका मांस मांसभोजी जन्तु भी नहीं खाते ।

अर्चयेदेव मित्राणि सति वाऽसति वा धने ।
नानर्थयन् प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम् ॥43॥

धन हो या न हो, मित्रों का तो सत्कार करे ही । मित्रों से कुछ भी न मांगते हुए उनके सार-असार की परीक्षा न करे ।

सन्तापाद् भ्रश्यते रूपं सन्तापाद् भ्रश्यते बलम् ।
सन्तापाद् भ्रश्यते ज्ञानं सन्तापाद् व्याधिमृच्छति ॥44॥

संताप से रूप नष्ट हो जाता है, संताप से बल नष्ट होता है, संताप से ज्ञान नष्ट होता है और संताप से मनुष्य रोग को प्राप्त होता है ।

अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते ।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मा स्म शोके मनः कृथाः ॥45॥

अभीष्ट वस्तु शोक करने से नहीं मिलती, उससे तो केवल शरीर को कष्ट होता है और शत्रु प्रसन्न होते हैं इसलिए आप मन में शोक न करें।

पुनर्नरो म्रियते जायते च पुनर्नरो हीयते वर्धते च ।

पुनर्नरो याचति याच्यते च पुनर्नरः शोचति शोच्यते च ॥46॥

मनुष्य बार-बार मरता और जन्म लेता है, बार-बार हानि उठाता और बढ़ता है, बार-बार स्वयं दूसरे से याचना करता है और दूसरे उससे याचना करते हैं तथा बारंबार वह दूसरों के लिए शोक करता है और दूसरे उसके लिए शोक करते हैं।

सुखं च दुःखं च भवाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च ।

पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति तस्माद् धीरो न च हश्येन्न शोचेत् ॥47॥

सुख-दुःख, उत्पत्ति-विनाश, लाभ-हानि और जीवन-मरण—ये बारी-बारी से सबको प्राप्त होते रहते हैं, इसलिए धीर पुरुष को इनके लिए हर्ष और शोक नहीं करना चाहिए।

चलानि हीमानि षडिन्द्रियाणि तेषां यद् यद् वर्धते यत्र यत्र ।

ततस्ततः स्रवते बुद्धिरस्य छिद्रोदकुम्भादिव नित्यमम्भः ॥48॥

ये छः इन्द्रियां बहुत ही चंचल हैं, इनमें से जो-जो इन्द्रिय जिस-जिस विषय की ओर बढ़ती है, वहां-वहां बुद्धि उसी प्रकार क्षीण होती है, जैसे फूटे घड़े से पानी सदा चू जाता है।

धृतराष्ट्र उवाच

तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया ।

मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति ॥49॥

धृतराष्ट्र ने कहा—काठ में छिपी हुई आग के समान सूक्ष्म धर्म से बंधे हुए राजा युधिष्ठिर के साथ मैंने मिथ्या व्यवहार किया है अतः वे युद्ध करके मेरे मूर्ख पुत्रों का नाश कर डालेंगे।

नित्योद्विग्नमिदं सर्वं नित्योद्विग्नमिदं मनः ।

यत् तत् पदमनुद्विग्नं तन्मे वद महामते ॥50॥

महामते! यह सब कुछ सदा ही भय से उद्विग्न है, मेरा यह मन भी भय से उद्विग्न है, इसलिए जो उद्वेगशून्य और शान्त पद हो, वही मुझे बताओ।

विदुर उवाच

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ।

नान्यत्र लोभसंत्यागाच्छान्तिं पश्यामि तेऽनघ ॥51॥

विदुरजी बोले—पापशून्य नरेश! विद्या, तप, इन्द्रियनिग्रह और लोभत्याग के सिवा और कोई आपके लिए शान्ति का उपाय मैं नहीं देखता ।

बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विदन्ते महत् ।

गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति ॥52॥

बुद्धि से मनुष्य अपने भय को दूर रखता है, तपस्या से महत् पद को प्राप्त होता है, गुरु-शुश्रूषा से ज्ञान और योग से शान्ति पाता है ।

अनाश्रिता दानपुण्यं वेदपुण्यमनाश्रिताः ।

रागद्वेषाविनिर्मुक्ता विचरन्तीह मोक्षिणः ॥53॥

मोक्ष की इच्छा रखनेवाले मनुष्य दान के पुण्य का आश्रय नहीं लेते, वेद के पुण्य का आश्रय नहीं लेते, किंतु निष्काम भाव से राग-द्वेष से रहित हो इस लोक में विचरते रहते हैं ।

स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः ।

तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते ॥54॥

सम्यक् अध्ययन, न्यायोचित युद्ध, पुण्यकर्म और अच्छी तरह की हुई तपस्या के अन्त में सुख की वृद्धि होती है ।

स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते ।

न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः ॥55॥

राजन्! आपस में फूट रखनेवाले लोग अच्छे बिछौनों से युक्त पलंग पाकर भी कभी सुख की नींद नहीं सोने पाते, उन्हें स्त्रियों के पास रहकर तथा सूत-मागधों द्वारा की हुई स्तुति सुनकर भी प्रसन्नता नहीं होती ।

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्मं न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः ।

न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति न वै भिन्ना प्रशमं रोचयन्ति ॥56॥

जो परस्पर भेदभाव रखते हैं, वे कभी धर्म का आचरण नहीं करते। सुख भी नहीं पाते। उन्हें गौरव नहीं प्राप्त होता तथा शान्ति की वार्ता भी नहीं सुहाती ।

न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम् ।

भिन्नानां वै मनुजेन्द्र परायणं न विद्यते किञ्चिदन्यद् विनाशात् ॥57॥

हित की बात भी कही जाय तो उन्हें अच्छी नहीं लगती। उनके योगक्षेम की भी सिद्धि नहीं हो पाती। राजन्! भेदभाववाले पुरुषों की विनाश के सिवा और कोई गति नहीं है।

सम्पन्नं गोषु सम्भाव्यं सम्भाव्यं ब्राह्मणे तपः ।

सम्भाव्यं चापलं स्त्रीषु सम्भाव्यं ज्ञातितो भयम् ॥58॥

जैसे गौओं में दूध, ब्राह्मण में तप और युवती स्त्रियों में चपलता होना अधिक सम्भव है, उसी प्रकार अपने जाति-बन्धुओं से भय होना भी सम्भव ही है।

तन्तवोऽप्यायिता नित्यं तनवो बहुलाः समाः ।

बहून् बहुत्वादायासान् सहन्तीत्युपमा सताम् ॥59॥

नित्य सींचकर बढ़ायी हुई पतली लताएं बहुत होने के कारण बहुत वर्षों तक नाना प्रकार के झोंके सहती हैं, यही बात सत्पुरुषों के विषय में भी समझनी चाहिए। वे दुर्बल होने पर भी सामूहिक शक्ति से बलवान् हो जाते हैं।

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च ।

धृतराष्ट्रोऽल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥60॥

भरतश्रेष्ठ! धृतराष्ट्र! जलती हुई लकड़ियां अलग-अलग होने पर धुआं फेंकती हैं और एक साथ होने पर प्रज्वलित हो उठती हैं। इसी प्रकार जाति-बन्धु भी फूट होने पर दुःख उठाते हैं और एकता होने पर सुखी रहते हैं।

ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ।

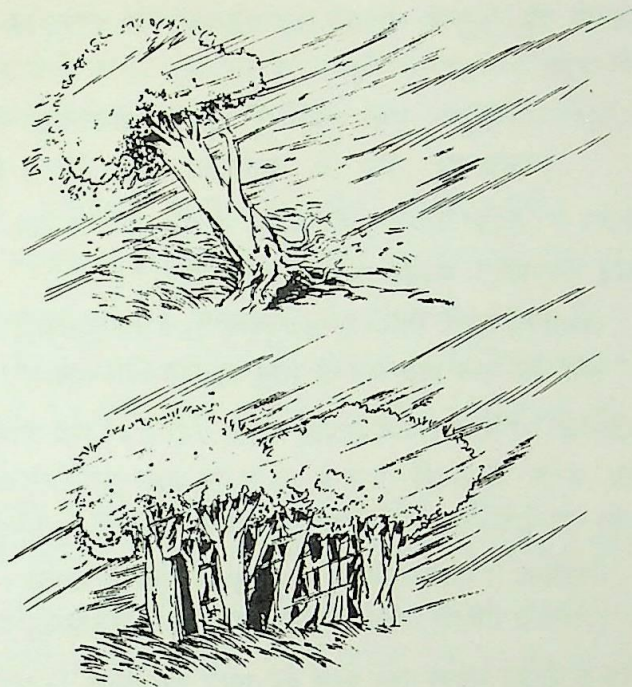
वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतन्ति ते ॥62॥

धृतराष्ट्र! जो लोग ब्राह्मणों, स्त्रियों, जातिवालों और गौओं पर ही शूरता प्रकट करते हैं, वे डंठल से पके हुए फलों की भांति नीचे गिरते हैं।

महानयैकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः ।

प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात् ॥63॥

यदि वृक्ष अकेला है तो वह बलवान्, दृढ़तम तथा बहुत बड़ा होने पर भी एक ही क्षण में आंधी के द्वारा बलपूर्वक शाखाओं सहित धराशायी किया जा सकता है।



अथ ये सहिता वृक्षाः संघशः सुप्रतिष्ठितः ।
ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात् ॥64॥

किंतु जो बहुत-से वृक्ष एक साथ रहकर समूह के रूप में खड़े हैं, वे एक-दूसरे के सहारे बड़ी-से-बड़ी आंधी को भी सह सकते हैं।

एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम् ।
शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम् ॥65॥

इसी प्रकार समस्त गुणों से सम्पन्न मनुष्य को भी अकेला होने पर शत्रु अपनी ताकत के अंदर समझते हैं, जैसे अकेले वृक्ष को वायु।

अन्योन्यसमुपष्टम्भादन्योन्यापाश्रयेण च ।
ज्ञातयः सम्प्रवर्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत ॥66॥

किंतु परस्पर मेल होने से और एक से दूसरे को सहारा मिलने से जातिवाले लोग उसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं, जैसे तालाब में कमल।

अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः ।
येषां चान्तानि भुज्जीत ये च स्युः शरणागताः ॥66॥

ब्राह्मण, गौ, कुटुम्बी, बालक, स्त्री, अन्नदाता और शरणागत—ये अवध्य होते हैं।

न मनुष्ये गुणः कश्चिद् राजन् सधनतामृते ।

अनातुरत्वाद् भद्रं ते मृतकल्या हि रोगिणः ॥67॥

राजन् ! आपका कल्याण हो, मनुष्य में धन और आरोग्य को छोड़कर दूसरा कोई गुण नहीं है, क्योंकि रोगी तो मुर्दे के समान है।

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगी पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम् ।

सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य ॥68॥

महाराज! जो बिना रोग के उत्पन्न, कड़वा, सिर में दर्द पैदा करनेवाला, पाप से सम्बद्ध, कठोर, तीखा और गरम है, जो सज्जनों द्वारा पान करने योग्य है और जिसे दुर्जन नहीं पी सकते—उस क्रोध को आप पी जाइए और शान्त होइए।

रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम् ।

दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव न बुध्यन्ते धनभोगान्न सौख्यम् ॥69॥

रोग से पीड़ित मनुष्य मधुर फलों का आदर नहीं करते, विषयों में भी उन्हें कुछ सुख या सार नहीं मिलता। रोगी सदा ही दुखी रहते हैं। वे न तो धनसम्बन्धी भोगों का और न सुख का ही अनुभव करते हैं।

पुरा ह्युक्तं नाकरोस्त्वं वचो मे द्यूते जितां द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन् ।

दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां कितवत्वं पण्डिता वर्जयन्ति ॥70॥

राजन्! पहले जुए में द्रौपदी को जीती गयी देखकर मैंने कहा था, 'आप द्यूतक्रीड़ा में आसक्त दुर्योधन को रोकिए, विद्वान् लोग इस प्रवचन के लिए मना करते हैं।' किंतु आपने मेरा कहना नहीं माना।

न तद् बलं यन्मृदुना विरुध्यते सूक्ष्मो धर्मस्तरसा सेवितव्यः ।

प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्रीर्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान् ॥71॥

वह बल नहीं, जिसका मृदुल स्वभाव के साथ विरोध हो, सूक्ष्म धर्म का शीघ्र ही सेवन करना चाहिए। क्रूरतापूर्वक उपार्जन की हुई लक्ष्मी नश्वर होती है, यदि वह मृदुलतापूर्वक बढ़ायी गयी हो तो पुत्र-पौत्रों तक स्थिर रहती है।

धार्तराष्ट्राः पाण्डवान् पालयन्तु पाण्डोः सुतास्तवपुत्रांश्च पान्तु ।

एकारिमित्राः कुरवो ह्येककार्या जीवन्तु राजन् सुखिनः समृद्धा ॥72॥

राजन्! आपके पुत्र पाण्डवों की रक्षा करें और पाण्डु के पुत्र आपके पुत्रों की रक्षा करें। सभी कौरव एक-दूसरे के शत्रुओं को शत्रु तथा मित्र को मित्र समझें। सबका एक ही कर्तव्य हो, सभी सुखी और समृद्धिशाली होकर जीवन व्यतीत करें।

मेढीभूतः कौरवाणां त्वमद्य त्वय्याधीनं कुरुकुलमाजमीढ ।

पार्थान् बालान् वनवासप्रतप्तान् गोपायस्य स्वं यशस्तात रक्षन् ॥73॥

अजमीढकुलनन्दन! इस समय आप ही कौरवों के आधार हैं, कुरुवंश आपके ही अधीन है। तात! कुन्ती के पुत्र अभी बालक हैं और वनवास से बहुत कष्ट पा चुके हैं, इस समय अपने यश की रक्षा करते हुए पाण्डवों का पालन कीजिए।

सन्धत्स्य त्वं कौरव पाण्डुपुत्रैर्मा तेऽन्तरं रिपवः प्रार्थयन्तु ।

सत्ये स्थितास्ते नरदेव सर्वे दुर्योधनं स्थापय त्वं नरेन्द्र ॥74॥

कुरुराज! आप पाण्डवों से सन्धि कर लें, जिससे शत्रुओं को आपका छिद्र देखने का अवसर न मिले। नरदेव! समस्त पाण्डव सत्य पर डटे हुए हैं, अब आप अपने पुत्र दुर्योधन को रोकिए।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि
विदुरनीतिवाक्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

पांचवा अध्याय

सार संक्षेप

- यमराज के दूत किन्हें नरक में ले जाते हैं।
- जो जैसा करे उसके साथ वैसे बर्ताव की नीति, कौन क्या नष्ट करता है।
- मनुष्य पूरे सौ वर्षों तक क्यों नहीं जीवित रह पाता, धृतराष्ट्र का यह प्रश्न और विदुर के द्वारा इसका उत्तर।
- ब्रह्म हत्यारों के समान पापी।
- स्वर्ग लोक के अधिकारी विद्वान् के गुण, अप्रिय किंतु हितकर वचन बोलनेवाले की दुर्लभता तथा राजा का सच्चा सहायक।
- आत्म-कल्याण के लिए सब कुछ त्यागने तथा धन एवं स्त्री द्वारा भी आत्मरक्षा करने का आदेश।
- जुए को वैर का कारण बताते हुए विदुर का धृतराष्ट्र से पाण्डवों के प्रति किये जानेवाले दुर्व्यवहार के लिए उलाहना।
- राजा भृत्यों का विश्वासपात्र कैसे बनता है, सेवकों की जीविका बंद करने से हानि।
- सुयोग्य सहायकों की आवश्यकता, स्वामी के कृपापात्र सेवक के गुण, त्यागनेयोग्य भृत्य के दुर्गुण तथा दूत के आठ गुण।
- सावधान मनुष्य क्या-क्या न करे।
- किनके साथ लेन-देन का व्यवहार न करे।
- पुरुषों को उद्दीप्त करनेवाले आठ गुण तथा राजसम्मान की महत्ता।
- स्नान से दस और स्वल्पाहार से छः लाभ।
- किसको अपने घर में न ठहरने दे और किन लोगों से कभी सहायता की

याचना न करे।

- ❑ सेवन करने के अयोग्य छः प्रकार के मनुष्य।
- ❑ धन और सहायक एक दूसरे के आश्रित हैं, वानप्रस्थ आश्रम कब ग्रहण करे।
- ❑ सम्पूर्ण सिद्धियों का मूलमंत्र क्या है, किसे अपनी जीविका के नाश का भय नहीं होता।
- ❑ पाण्डवों के साथ होनेवाले युद्ध का दुष्परिणाम बताकर उनके परस्पर मेल से होनेवाले लाभ का दिग्दर्शन कराना।
- ❑ पापासक्त मनुष्य दूसरे के दुर्गुण पर ही दृष्टि रखते हैं।
- ❑ धर्माचरण से अर्थसिद्धि, बुद्धि को पाप से दूर रखने में लाभ, धर्म, अर्थ और काम के समयानुसार सेवन का फल।
- ❑ राजलक्ष्मी का अधिकारी कौन है।
- ❑ मनुष्यों के पांच प्रकार के बल।
- ❑ महान् शक्तिशाली से वैर न करे, विद्वान् पुरुष किन पर भरोसा नहीं करते।
- ❑ बुद्धि की प्रबलता, किनका अनादर न करे।
- ❑ कुटुम्बीजन काठ में छिपी हुई आग के समान हैं, उनके फूटने से सब कुछ भस्म हो सकता है—इसका प्रतिपादन।
- ❑ कौरव और पाण्डवों में लता और वृक्ष का तथा वन और सिंह का-सा सम्बन्ध है, अतः इन्हें मिलकर रहना चाहिए, यह धृतराष्ट्र को बताना।
- ❑ क्रोध को पीने से शान्ति, रोगी को सुख का अभाव।
- ❑ धृतराष्ट्र को उलाहना देते हुए विदुर का उनसे कौरव-पाण्डव में मेल एवं संधि कराने का आग्रह।

पांचवां अध्याय विस्तार से

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च श्रुतं दमश्च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥



ये आठ गुण पुरुष की शोभा बढ़ाते हैं—बुद्धि, कुलीनता,
शास्त्रज्ञान, इन्द्रियनिग्रह, पराक्रम, अधिक न बोलने वाला
स्वभाव, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता ।

विदुर उवाच

सप्तदशेमान् राजेन्द्र मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।
 वैचित्रवीर्यं पुरुषानाकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः ॥१॥
 दानवेन्द्रस्य च धनुरनाम्यं नमतोऽब्रवीत् ।
 अथो मरीचिनः पादानग्राह्यान् गृह्णा तस्तथा ॥२॥

यश्चाशिष्यं शास्ति वै यश्च तुष्येद्
 यश्चातिवेलं भजते द्विषन्तम् ।
 स्त्रियश्च यो रक्षति भद्रमश्नुते
 यश्चायाच्यं याचते कथ्यते च ॥३॥
 यश्चाभिजातः प्रकरोत्यकार्यं
 यश्चाबलो बलिना नित्यवैरी ।
 अश्रद्धधानाय च यो ब्रवीति
 यश्चाकाम्यं कामयते नरेन्द्र ॥४॥
 वध्वावहासं श्वशुरो मन्यते यो
 वध्वाऽवसन्नभयो मानकामः ।
 परक्षेत्रे निर्वपति स्वबीजं
 स्त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम् ॥५॥
 यश्चापि लब्ध्वा न स्मरामीतिवादी
 दत्त्वा च यः कथ्यति याच्यमानः ।
 यश्चासतः सत्त्वमुपानयीत
 एतान् नयन्ति निरयं पाशहस्ताः ॥६॥

विदुरजी कहते हैं—राजेन्द्र! विचित्रवीर्यनन्दन! स्वायम्भुव मनुजी ने कहा है कि नीचे लिखे सत्रह प्रकार के पुरुषों को पाश हाथ में लिये यमराज के दूत नरक में ले जाते हैं—जो आकाश पर मुष्टि से प्रहार करता है, न झुकाये जा सकनेवाले वर्षाकालीन इन्द्रधनुष को झुकाना चाहता है, पकड़ में न आनेवाली सूर्य की किरणों को पकड़ने का प्रयास करता है, शासन के अयोग्य पुरुष पर शासन करता है, मर्यादा का उल्लंघन करके संतुष्ट होता है, शत्रु की सेवा करता है, स्त्री-रक्षा के द्वारा अपनी जीविका चलाता है, याचना करने से अयोग्य पुरुष से याचना करता है तथा आत्मप्रशंसा करता है, अच्छे कुल में होकर भी नीच कर्म करता है, दुर्बल होकर भी बलवान् से वैर करता है, श्रद्धाहीन को उपदेश करता

है, न चाहने योग्य वस्तुओं को चाहता है, श्वसुर होकर पुत्रवधू के साथ परिहास पसंद करता है तथा पुत्रवधू की सहायता से संकट से छूटकर भी पुनः उससे अपनी प्रतिष्ठा चाहता है, परस्त्री में अपने वीर्य का आधान करता है, आवश्यकता से अधिक स्त्री की निन्दा करता है, किसी से कोई वस्तु पाकर भी 'याद नहीं है' ऐसा कहकर उसे दबाना चाहता है, माँगने पर दान देकर उसके लिए अपनी डींग हांकता है और झूठ को सही साबित करने का प्रयास करता है।

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः ।

मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥७॥

जो मनुष्य अपने साथ जैसा बर्ताव करे, उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिए—यही नीति धर्म है। कपट का आचरण करनेवाले के साथ कपटपूर्ण बर्ताव करे और अच्छा बर्ताव करनेवाले के साथ साधु-भाव से ही बर्ताव करना चाहिए।

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया ।

कामो हियं वृत्तमनार्यसेवा क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः ॥८॥

बुढ़ापा रूप का, आशा धैर्य का, मृत्यु प्राणों का, असूया धर्माचरण का, काम लज्जा का, नीच पुरुषों की सेवा सदाचार का, क्रोध लक्ष्मी का और अभिमान सर्वस्व का ही नाश कर देता है।

धृतराष्ट्र उवाच

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा ।

नाप्नोत्यय च तत् सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥९॥

धृतराष्ट्र ने कहा—जब सभी वेदों में पुरुष को सौ वर्ष की आयुवाला बताया गया है, तो वह किस कारण से अपनी पूर्ण आयु को नहीं पाता।

विदुर उवाच

अतिमानोऽतिवादश्च तथात्यागो नराधिप ।

क्रोधश्चात्मविधिस्ता च मित्रद्रोहश्च तानि षट् ॥१०॥

एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम् ।

एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते ॥११॥

विदुरजी बोले—राजन्! आपका कल्याण हो! अत्यन्त अभिमान, अधिक

बोलना, त्याग का अभाव, क्रोध, अपना ही पेट पालने की चिन्ता और मित्रद्रोह—ये छः तीखी तलवारें देहधारियों की आयु को काटती हैं। ये ही मनुष्यों का वध करती हैं, मृत्यु नहीं।

विश्वस्तस्यैति यो दारान् यश्चापि गुरुतल्पगः ।

वृषलीपतिर्द्विजो यश्च पानपश्चैव भारत ॥12॥

आदेशकृद् वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्च यः ।

शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः ।

एतैः समेत्य कर्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः ॥13॥

भारत! जो अपने ऊपर विश्वास करनेवाले की स्त्री के साथ समागम करता है, जो गुरुस्त्रीगामी है, ब्राह्मण होकर शूद्र की स्त्री से सम्बन्ध रखता है, शराब पीता है तथा जो बड़ों पर हुक्म चलानेवाला, दूसरों की जीविका नष्ट करनेवाला, ब्राह्मणों को सेवा कार्य के लिए इधर-उधर भेजनेवाला और शरणागत की हिंसा करनेवाला है—ये सब-के-सब ब्रह्महत्यारे के समान हैं, इनकी संगति हो जाने पर प्रायश्चित्त करें—यह वेदों की आज्ञा है।

गृहीतवाक्यो नयविद् वदान्यः शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च ।

नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥14॥

बड़ों की आज्ञा माननेवाला नीतिज्ञ, दाता, यज्ञशेष अन्न का भोजन करनेवाला, हिंसारहित, अनर्थकारी कार्यों से दूर रहनेवाला, कृतज्ञ, सत्यवादी और कोमल स्वभाववाला विद्वान् स्वर्गगामी होता है।

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।

अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥15॥

राजन्! सदा प्रिय वचन बोलनेवाले मनुष्य तो सहज में ही मिल सकते हैं, किंतु जो अप्रिय होता हुआ हितकारी हो, ऐसे वचन के वक्ता और श्रोता दोनों ही दुर्लभ हैं।

यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये ।

अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् ॥16॥

जो धर्म का आश्रय लेकर तथा स्वामी को प्रिय लगेगा या अप्रिय—इसका विचार छोड़कर, अप्रिय होने पर भी हितकारी बात कहता है, उसी से राजा को सच्ची सहायता मिलती है।

त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥17॥

कुल की रक्षा के लिए एक मनुष्य का, ग्राम की रक्षा के लिए कुल का, देश की रक्षा के लिए गांव का और आत्मा के कल्याण के लिए सारी पृथ्वी का त्याग कर देना चाहिए ।

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥18॥

आपत्ति के लिए धन की रक्षा करे, धन के द्वारा स्त्री की रक्षा करे और स्त्री एवं धन दोनों के द्वारा सदा अपनी रक्षा करे ।

द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम् ।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥19॥



पहले के समय में जुआ खेलना मनुष्यों में वैर डालने का कारण देखा गया है, अतः बुद्धिमान् मनुष्य हंसी के लिए भी जुआ न खेले ।

उक्तं मया द्यूतकालेऽपि राजन् नेदं युक्तं वचनं प्रातिपेय ।
तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य न रोचते तव वैचित्रवीर्य ॥20॥

प्रतीपनन्दन! विचित्रवीर्यकुमार! राजन्! मैंने जुए का खेल आरम्भ होते समय भी कहा था कि यह ठीक नहीं है, किंतु रोगी को जैसे दवा और पथ्य नहीं भाते, उसी तरह मेरी वह बात भी आपको अच्छी नहीं लगी ।

कैकैरिमांश्चित्रबर्हान् मयूरान्

पराजयेथाः पाण्डवान् धार्तराष्ट्रैः ।

हित्वा सिंहान् कोष्ठुकान् गूहमानः

प्राप्ते काले शोचिता त्वं नरेन्द्र ॥21॥

नरेन्द्र! आप कौओं के समान अपने पुत्रों के द्वारा विचित्र पंखवाले मोरों के सदृश पाण्डवों को पराजित करने का प्रयत्न कर रहे हैं, सिंहों को छोड़कर सियारों की रक्षा कर रहे हैं, समय आने पर आपको इसके लिए पश्चात्ताप करना पड़ेगा ।

यस्तात न कुध्यति सर्वकालं भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य ।

तस्मिन् भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति न चैनमापत्सु परित्यजन्ति ॥22॥

तात! जो स्वामी सदा हित साधन में लगे रहनेवाले अपने भक्त सेवक पर कभी क्रोध नहीं करता, उस पर भृत्यगण विश्वास करते हैं और आपत्ति के समय भी नहीं छोड़ते ।

न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन

राज्यं धनं संजिघृक्षेदपूर्वम् ।

त्यजन्ति ह्येनं वञ्चिता वै विरुद्धाः

स्निग्धा ह्यमात्याः परिहीनभोगाः ॥23॥

सेवकों की जीविका बंद करके दूसरों के राज्य और धन के अपहरण का प्रयत्न नहीं करना चाहिए, क्योंकि अपनी जीविका छिन जाने से भोगों से वंचित होकर पहले के प्रेमी मन्त्री भी उस समय विरोधी बन जाते हैं और राजा का परित्याग कर देते हैं ।

कृत्यानि पूर्वं परिसंख्याय सर्वाण्यायव्यये चानुरूपां च वृत्तिम् ।

संगृहीयादनुरूपान् सहायान् सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि ॥24॥

पहले कर्तव्य, आय-व्यय और उचित वेतन आदि का निश्चय करके फिर सुयोग्य सहायकों का संग्रह करे, क्योंकि कठिन-से-कठिन कार्य भी सहायकों द्वारा साध्य होते हैं ।

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्नी ।

वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः ॥25॥

जो सेवक स्वामी के अभिप्राय को समझकर आलस्यरहित हो समस्त कार्यों को पूरा करता है, जो हित की बातें करनेवाला स्वामीभक्त, सज्जन और राजा की शक्ति को जाननेवाला है, उसे अपने समान समझकर कृपा करनी चाहिए ।

वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः ।

प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी त्याज्यः स तादृक् त्वरयैव भृत्यः ॥26॥

जो सेवक स्वामी के आज्ञा देने पर उनकी बात का आदर नहीं करता, किसी काम में लगाये जाने पर इनकार कर जाता है, अपनी बुद्धि पर गर्व करने और प्रतिकूल बोलनेवाले उस भृत्य को शीघ्र ही त्याग देना चाहिए ।

अस्तब्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः ।

अरोगजातीयमुदारवाक्यं दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ॥27॥

अहंकाररहित, कायरताशून्य, शीघ्र काम पूरा करनेवाला, दयालु, शुद्धहृदय, दूसरों के बहकावे में न आनेवाला, नीरोग और उदार वचनवाला—इन आठ गुणों से युक्त मनुष्यों को 'दूत' बनाने योग्य बताया गया है ।

न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले ।

न चत्वे निशि तिष्ठेन्निगूढो न राजकाम्यां योषितं प्रार्थयीत ॥28॥

सावधान मनुष्य विश्वास करके सायंकाल में कभी किसी दूसरे अविश्वस्त मनुष्य के घर न जाए, रात में छिपकर चौराहे पर न खड़ा हो और राजा जिस स्त्री को ग्रहण करना चाहता हो, उसे प्राप्त करने का यत्न न करे ।

न निह्वं मन्त्रगतस्य गच्छेत् संसृष्टमन्त्रस्य कुसङ्गतस्य ।

न च ब्रूयान्नाश्वसिमि त्वयीति सकारणं व्यपदेशं तु कुर्यात् ॥29॥

दुष्ट सहायकोंवाला राजा जब बहुत लोगों के साथ मंत्रणा समिति में बैठकर सलाह ले रहा हो, उस समय उसकी बात का खण्डन न करे, 'मैं तुम पर विश्वास नहीं करता' ऐसा भी न कहे, अपितु कोई युक्तिसंगत बहाना बनाकर वहां से हट जाए ।

घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा ।

सेनाजीवी चोद्धतभूतिरेव व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते ॥30॥

अधिक दयालु राजा, व्यभिचारिणी स्त्री, राजकर्मचारी, पुत्र, भाई, छोटे बच्चोंवाली विधवा, सैनिक और जिसका अधिकार छीन लिया गया है, वह पुरुष—इन सबके साथ लेन-देन का व्यवहार न करे।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च श्रुतं दमश्च ।

पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥31॥

ये आठ गुण पुरुष की शोभा बढ़ाते हैं—बुद्धि, कुलीनता, शास्त्रज्ञान, इन्द्रियनिग्रह, पराक्रम, अधिक न बोलने का स्वभाव, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता।

एतान् गुणांस्तात महानुभावानेको गुणः संश्रयते प्रसह्य ।

राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं सर्वान् गुणानेष गुणो विभर्ति ॥32॥

तात! एक गुण ऐसा है, जो इन सभी महत्त्वपूर्ण गुणों पर हठात् अधिकार कर लेता है। राजा जिस समय किसी मनुष्य का सत्कार करता है, उस समय वह गुण (राजसम्मान) उपर्युक्त सभी गुणों से बढ़कर शोभा पाता है।

गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः ।

स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः ॥33॥

नित्य स्नान करनेवाले मनुष्य को बल, रूप, मधुर स्वर, उज्ज्वल वर्ण, कोमलता, सुगन्ध, पवित्रता, शोभा, सुकुमारता और सुन्दरी स्त्रियां—ये दस लाभ प्राप्त होते हैं।

गुणाश्चषण्मिमतभुक्तं भजन्ते आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च ।

अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति ॥34॥

थोड़ा भोजन करनेवाले को निम्नलिखित छः गुण प्राप्त होते हैं—आरोग्य, आयु, बल और सुख तो मिलते ही हैं, उसकी संतान सुंदर होती है तथा 'यह बहुत खानेवाला है' ऐसा कहकर लोग उसपर आक्षेप नहीं करते।

अकर्मशीलं च महाशनं च लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम् ।

अदेशकालज्ञमनिष्टवेषमेतान् गृहे न प्रतिवासयेत् ॥35॥

अकर्मण्य, बहुत खानेवाले, सब लोगों से वैर करनेवाले, मायावी, क्रूर, देश-काल का ज्ञान न रखनेवाले और निन्दित वेष धारण करनेवाले मनुष्य को कभी अपने घर में न ठहरने दे।

कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम् ।

निष्पूरिणं कृतवैरं कृतघ्नमेतान् भृशार्तोऽपि न जातु याचेत् ॥36॥

बहुत दुखी होने पर भी कृपण, गाली बकनेवाले, मूर्ख, जंगल में रहनेवाले, धूर्त, नीचसेवी, निर्दयी, वैर बांधनेवाले और कृतघ्न से कभी सहायता की याचना नहीं करनी चाहिए ।

संक्लिष्टकर्माणमतिप्रमादं नित्यानृतं चादृढभक्तिकं च ।

विसृष्टरागं पटुमानिनं चाप्येतान् न सेवेत नराधमान् षट् ॥37॥

क्लेशप्रद कर्म करनेवाला, अत्यन्त प्रमादी, सदा असत्यभाषण करनेवाला, अस्थिर भक्तिवाला, स्नेह से रहित, अपने को चतुर माननेवाला—इन छः प्रकार के अधम पुरुषों की सेवा न करे ।

सहायबन्धना ह्यर्थाः सहायाश्चार्यबन्धनाः ।

अन्योन्यबन्धनावेतौ विनान्योन्यं न सिध्यतः ॥38॥

धन की प्राप्ति सहायक की अपेक्षा रखती है और सहायक धन की अपेक्षा रखते हैं। ये दोनों एक-दूसरे के आश्रित हैं, परस्पर के सहयोग बिना इनकी सिद्धि नहीं होती ।

उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च कृत्वा वृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय काञ्चित् ।

स्थाने कुमारी प्रतिपाद्य सर्वा अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत् ॥39॥

पुत्रों को उत्पन्न कर, उन्हें ऋण के भार से मुक्त करके, उनके लिए किसी जीविका का प्रबन्ध कर दे, फिर कन्याओं का योग्य वर के साथ विवाह कर देने के पश्चात् वन में मुनिवृत्ति से रहने की इच्छा करे ।

हितं यत् सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम् ।

तत् कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये ॥40॥

जो सम्पूर्ण प्राणियों के लिए हितकर और अपने लिए भी सुखद हो, उसे ईश्वरार्पणबुद्धि से करे, सम्पूर्ण सिद्धियों का यही मूलमन्त्र है ।

वृद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वमुत्थानमेव च ।

व्यवसायश्च यस्य स्यात् तस्यावृत्तिभयं कुतः ॥41॥

जिसमें बढ़ने की शक्ति, प्रभाव, तेज, पराक्रम, उद्योग और निश्चय है, उसे अपनी जीविका के नाश का भय कैसे हो सकता है ।

पश्य दोषान् पाण्डवैर्विग्रहे त्वं यत्र व्यथेयुरपि देवाः सशक्राः ।

पुत्रैर्वैरं नित्यमुद्विग्नवासो यशःप्रणाशो द्विषतां च हर्षः ॥42॥

पाण्डवों के साथ युद्ध करने में जो दोष है, उन पर दृष्टि डालिए, उनसे संग्राम छिड़ जाने पर इन्द्र आदि देवताओं को भी कष्ट ही उठाना पड़ेगा। इसके सिवा पुत्रों के साथ वैर, नित्य उद्वेगपूर्ण जीवन, कीर्ति का नाश और शत्रुओं का आनन्द होगा।

भीष्मस्य कोपस्तव चैवेन्द्रकल्प द्रोणस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य ।

उत्सादयेल्लोकमिमं प्रवृद्धः श्वेतो ग्रहस्तिर्यग्निवापतन् खे ॥43॥

इन्द्र के समान पराक्रमी महाराज! आकाश में तिरछा उदित हुआ धूमकेतु जैसे सारे संसार में अशान्ति और उपद्रव खड़ा कर देता है, उसी तरह भीष्म, आप, द्रोणाचार्य और राजा युधिष्ठिर का बढ़ा हुआ कोप इस संसार का संहार कर सकता है।

तव पुत्रशतं चैव कर्णः पञ्च च पाण्डवाः ।

पृथिवीमनुशासेयुरखिलां सागराम्बराम् ॥44॥

आपके सौ पुत्र, कर्ण और पाँच पाण्डव—ये सब मिलकर समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी का शासन कर सकते हैं।

धार्तराष्ट्रा वनं राजन् व्याघ्राः पाण्डुसुता मताः ।

मा वनं छिन्धि सब्याघ्रं मा व्याघ्रान् नीनशन् वनात् ॥45॥

हे राजन्! आपके पुत्र वन के समान हैं और पाण्डव उसमें रहनेवाले व्याघ्र हैं। आप व्याघ्रों सहित समस्त वन को नष्ट न कीजिए तथा वन से उन व्याघ्रों को दूर न भगाइए।

न स्याद्वनमृते व्याघ्रान् व्याघ्रा न स्युर्ऋते वनम् ।

वनं हि रक्ष्यते व्याघ्रैर्व्याघ्रान् रक्षति काननम् ॥46॥

व्याघ्रों के बिना वन की रक्षा नहीं हो सकती तथा वन के बिना व्याघ्र नहीं रह सकते, क्योंकि व्याघ्र वन की रक्षा करते हैं और वन व्याघ्रों की।

न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान् ।

यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः ॥47॥

जिनका मन पापों में लगा रहता है, वे लोग दूसरों के कल्याणमय गुणों को

जानने की वैसी इच्छा नहीं रखते, जैसी कि उनके अवगुणों को जानने की रखते हैं।

अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत् ।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम् ॥48॥

जो अर्थ की पूर्ण सिद्धि चाहता है, उसे पहले धर्म का ही आचरण करना चाहिए। जैसे स्वर्ग से अमृत दूर नहीं होता, उसी प्रकार धर्म से अर्थ अलग नहीं होता।

यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः ।
तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या ॥49॥

जिसकी बुद्धि पाप से हटाकर कल्याण में लगा दी गयी है, उसने संसार में जो भी प्रकृति और विकृति है—उन सबको जान लिया है।

यो धर्ममर्थं कामं च यथाकालं निषेवते ।
धनार्थकामसंयोगं सोऽमुत्रेह च विन्दति ॥50॥

जो समयानुसार धर्म, अर्थ और काम का सेवन करता है, वह इस लोक और परलोक में भी धर्म, अर्थ और काम को प्राप्त करता है

सन्नियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः ।
स श्रियो भाजनं राजन्यश्चापत्सु न मुह्यति ॥51॥

हे राजन् ! जो क्रोध और हर्ष के उठे हुए वेग को रोक लेता है और आपत्ति में भी धैर्य को खो नहीं बैठता, वही राजलक्ष्मी का अधिकारी होता है।

बलं पञ्चविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे ।
यत्तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते ॥52॥
अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते ।
तृतीयं धनलाभं तु बलमाहुर्मनीषिणः ॥53॥
यत्त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहं बलम् ।
अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम् ॥54॥
येन त्वेतानि सर्वाणि संगृहीतानि भारत ।
यद् बलानां बलं श्रेष्ठं तत् प्रज्ञाबलमुच्यते ॥55॥

हे राजन् ! आपका कल्याण हो, मनुष्यों में सदा पाँच प्रकार का बल होता है, उसे सुनिए। जो बाहुबल नामक बल है, वह कनिष्ठ बल कहलाता है, मन्त्री

का मिलना दूसरा बल है, मनीषी लोग धन के लोभ को तीसरा बल बताते हैं, और हे राजन्! जो बाप-दादों से प्राप्त हुआ मनुष्य का स्वाभाविक बल (कुटुम्ब का बल) है, वह 'अभिजात' नामक चौथा बल है। भारत! जिससे इन सभी बलों का संग्रह हो जाता है तथा जो सब बलों में श्रेष्ठ बल है, वह पांचवां 'बुद्धि का बल' कहलाता है।

महते योऽपकाराय नरस्य प्रभवेन्नरः ।

तेन वैरं समासज्य दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ॥56॥

जो मनुष्य का बहुत बड़ा अपकार कर सकता है, उस पुरुष के साथ वैर ठानकर इस विश्वास पर निश्चित न हो जाय कि मैं उससे दूर हूँ (वह मेरा कुछ नहीं कर सकता)।

स्त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्यायप्रभुशत्रुषु ।

भोगेष्वायुषि विश्वासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति ॥57॥

ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो स्त्री, राजा, साँप, पढ़े हुए पाठ, सामर्थ्यशाली व्यक्ति, शत्रु, भोग, आयुष्य पर पूर्ण विश्वास कर सकता है।

प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तोश्चिकित्सकाः सन्ति न चौषधानि ।

न होममन्त्रा न च मङ्गलानि नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः ॥58॥

जिसको बुद्धि के बाण से मारा गया है, उस जीव के लिए न कोई वैद्य है, न दवा है, न होम, न मन्त्र, न कोई मांगलिक कार्य, न अथर्ववेदोक्त प्रयोग और न भलीभांति सिद्ध बूटी ही है।

सर्पश्चाग्निश्व सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत ।

नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः ॥59॥

भारत! मनुष्य को चाहिए कि वह साँप, अग्नि, सिंह और अपने कुल में उत्पन्न व्यक्ति का अनादर न करे, क्योंकि ये सब बड़े तेजस्वी होते हैं।

अग्निस्तेजो महल्लोके गूढास्तिष्ठति दारुषु ।

न चोपयुंक्ते तदारु यावन्नोदीप्यते परैः ॥60॥

संसार में अग्नि एक महान् तेज है, वह काठ में छिपी रहती है, किंतु जब तक दूसरे लोग उसे प्रज्वलित न कर दें, तब तक वह उस काठ को नहीं जलाती।

स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते ।

तदारु च वनं चान्यान्निर्दहत्याशु तेजसा ॥61॥

वही अग्नि यदि काष्ठ से मथकर उद्दीप्त कर दी जाती है, तो वह अपने तेज से उस काष्ठ को, जंगल को तथा दूसरी वस्तुओं को भी जल्दी ही जला डालती है।

एवमेव कुले जाताः पावकोपमतेजसः ।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ॥62॥

इस प्रकार अपने कुल में उत्पन्न वे अग्नि के समान तेजस्वी पाण्डव क्षमाभाव से युक्त और विकारशून्य हो काष्ठ में छिपी अग्नि की तरह शांत भाव से स्थित हैं।

लताधर्मा त्वं सपुत्रः शालाः पाण्डुसुता मताः ।
न लता वर्धते जातु महद्द्रुममनाश्रिता ॥63॥

अपने पुत्रों सहित आप लता के समान हैं और पाण्डव महान् शालवृक्ष के सदृश हैं, महान् वृक्ष का आश्रय लिये बिना लता कभी बढ़ नहीं सकती।

वनं राजस्तव पुत्रोऽम्बिकेय सिंहान् वने पाण्डवांस्तात विद्धि ।

सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत् सिंहा विनश्येयुर्नृते वनेन ॥64॥

राजन्! अम्बिकानन्दन! आपके पुत्र एक वन हैं और पाण्डवों को उसके भीतर रहनेवाले सिंह समझिए। तात! सिंह से सूना हो जाने पर वन नष्ट हो जाता है और वन के बिना सिंह भी नष्ट हो जाते हैं।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि
विदुरनीतिवाक्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

छठा अध्याय

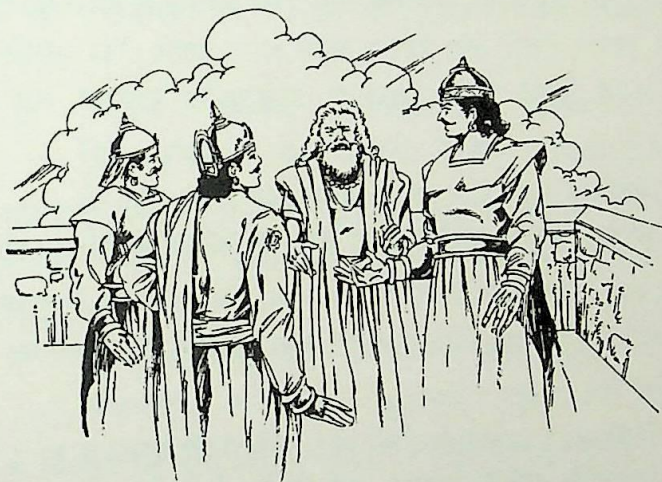
सार संक्षेप

- माननीय वृद्ध पुरुषों के आने पर खड़े होने और प्रणाम करने की आवश्यकता ।
- अतिथि-सत्कार का क्रम और अतिथि के सत्कार ग्रहण न करने पर गृहस्थ-जीवन की व्यर्थता ।
- पैर न धोने योग्य अतिथि, न बेचने योग्य वस्तुएँ ।
- सच्चे संन्यासी तथा पुण्यात्मा वानप्रस्थी का लक्षण ।
- बुद्धिमान् की बड़ी बाँहें होती हैं, राजा कहीं भी अधिक विश्वास न करे ।
- मनुष्य कैसा होना चाहिए, स्त्रियों के विशेष संरक्षण की आवश्यकता ।
- किसको किसकी रक्षा का भार सौंपे, कौन किससे उत्पन्न हुआ है और कुलीन संत कैसे होते हैं, इसका विवेचन ।
- कौन राजा दीर्घकाल तक ऐश्वर्य भोगता है, अपनी मंत्रणा दूसरों पर कैसे प्रकट नहीं होती, गुप्त मंत्रणा के स्थान, मंत्री न बनाने योग्य व्यक्ति, मंत्री का उत्तरदायित्व तथा मंत्रणा की रक्षा से ही राजा को सिद्धि की प्राप्ति ।
- बुरे कर्मों का दुष्परिणाम, उत्तम कर्मों के अनुष्ठान से लाभ तथा मंत्रणा सुनने का अधिकारी ।
- किस राजा के अधीन पृथ्वी होती है और किसे वह धन देती है ।
- राजा अकेले सब कुछ न हड़प ले ।
- किसको कौन जानता है, वश में आये हुए शत्रु का वध आवश्यक है ।
- कहाँ-कहाँ क्रोध को रोकना चाहिए, निरर्थक कलह के त्याग से लाभ, कैसे राजा को प्रजा नहीं चाहती, विद्वान् पुरुष की श्रेष्ठता ।

- ❑ मूर्ख और दुष्ट के बर्ताव तथा उसपर विपत्ति की सम्भावना ।
- ❑ सम्पूर्ण भूतों को अपना बना लेनेवाले गुण, श्रेष्ठ राजा को बिना धन के भी सहायक मिलते हैं ।
- ❑ लक्ष्मी को बढ़ानेवाले सात गुण तथा त्याग देने योग्य राजा ।
- ❑ निर्दोष को सताने से हानि, जिनसे अपनी हानि हो, उन्हें प्रसन्न रखने की आवश्यकता ।
- ❑ किनके हाथों में पड़े हुए पदार्थ संशय में पड़ जाते हैं तथा कौन लोग विपत्ति के समुद्र में डूबते हैं ।
- ❑ कौन पंडित है, किस मनुष्य का जीवन खतरे में होता है ।
- ❑ पाण्डवों को त्यागकर दुर्योधन को राज्य देना उसके पतन का कारण होगा—यह विदुरजी की चेतावनी ।

छठा अध्याय विस्तार से

गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ।
अरण्ये निःशलाके वा तत्र मन्त्रोऽभिधीयते ॥



पर्वत की चोटी अथवा राजमहल पर चढ़कर, एकांत स्थान
में जाकर या जंगल में तृण आदि से अनावृत स्थान
पर मंत्रणा करनी चाहिए ।

विदुर उवाच

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आगते ।

प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते ॥१॥

विदुरजी कहते हैं—जब कोई माननीय वृद्ध पुरुष निकट आता है, उस समय नवयुवक व्यक्ति के प्राण ऊपर को उठने लगते हैं, फिर जब वह वृद्ध के स्वागत में उठकर खड़ा होता है और प्रणाम करता है, तो पुनः प्राणों को वास्तविक स्थिति में प्राप्त करता है ।

पीठं दत्त्वा साधवेऽभ्यागताय आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ ।

सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः ॥२॥

धीर पुरुष को चाहिए जब कोई साधु पुरुष अतिथि के रूप में घर पर आवे तो पहले आसन देकर, जल लाकर उसके चरण पखारे, फिर उसकी कुशल पूछकर अपनी स्थिति बताए, तदनन्तर आवश्यकता समझकर अन्न भोजन कराए ।

यस्योदकं मधुपर्कं च गां च न मन्त्रवित् प्रतिगृह्णाति गेहे ।

लोभाद् भयादथ कार्पण्यतो वा तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्याः ॥३॥

वेदवेत्ता ब्राह्मण जिसके घर दाता के लोभ, भय या कंजूसी के कारण जल, मधुपर्क और गौ को नहीं स्वीकार करता, श्रेष्ठ पुरुषों ने उस गृहस्थ का जीवन व्यर्थ बताया है ।

चिकित्सकः शल्यकर्तावकीर्णी स्तेनः क्रूरो मद्यपो भ्रूणहा च ।

सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च भृशं प्रियोऽप्यतिथिर्नोदकार्हः ॥४॥

वैद्य, चीरफाड़ करनेवाला (जर्हाह), ब्रह्मचर्यभ्रष्ट, चोर, क्रूर, शराबी, गर्भ-हत्यारा, सेनाजीवी और वेदविक्रेता—ये यद्यपि पैर धोने के योग्य नहीं तथापि यदि अतिथि होकर आए तो विशेष प्रिय यानी आदर के योग्य होते हैं ।

अविक्रयं लवणं पक्वमन्नं दधि क्षीरं मधु तैलं घृतं च ।

तिला मांसं फलमूलानि शाकं रक्तं वासः सर्वगन्धा गुडाश्च ॥५॥

नमक, पका हुआ अन्न, दही, दूध, मधु, तेल, घी, तिल, मांस, फल, मूल, साग, लाल कपड़ा, सब प्रकार की गन्ध और गुड़—इतनी वस्तुएं बेचने योग्य नहीं हैं ।

अरोषणो यः समलोष्ठाश्मकाञ्चनः प्रहीणशोको गतसन्धिविग्रहः ।

निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये त्यजन्नुदासीनवदेषु भिक्षुकः ॥६॥

जो क्रोध न करनेवाला, ढेला-पत्थर और सुवर्ण को एक-सा समझनेवाला, शोकहीन, सन्धि-विग्रह से रहित, निन्दा-प्रशंसा से शून्य, प्रिय-अप्रिय का त्याग करनेवाला तथा उदासीन है, वही भिक्षुक (संन्यासी) है ।

नीवारमूलेङ्गुदशाकवृत्तिः सुसंयतात्माग्निकार्येषु चोद्यः ।

वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः ॥७॥

जो नीवार (जंगली चावल), कन्द मूल, इंगुद (लिसौड़ा) और साग खाकर निर्वाह करता है, मन को वश में रखता है, अग्रिहोत्र करता है, वन में रहकर भी अतिथि सेवा में सदा सावधान रहता है, वही पुण्यात्मा तपस्वी (वानप्रस्थी) श्रेष्ठ माना गया है ।

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ।

दीर्घो बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः ॥८॥

बुद्धिमान् पुरुष की बुराई करके इस विश्वास पर निश्चित न रहें कि मैं दूर हूँ। बुद्धिमान् की बांहें बड़ी लंबी होती हैं। सताये जाने पर वह उन्हीं बांहों से बदला लेता है ।

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।

विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥९॥

जो विश्वास का पात्र नहीं है, उसका तो विश्वास करे ही नहीं, किंतु जो विश्वासपात्र है, उसपर भी अधिक विश्वास न करे। विश्वास से जो भय उत्पन्न होता है, वह मूल का ही उच्छेद कर डालता है ।

अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः

श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशागो भवेत् ॥१०॥

मनुष्य को चाहिए कि वह ईर्ष्यारहित, स्त्रियों का रक्षक, सम्पत्ति का न्यायपूर्वक विभाग करनेवाला, प्रियवादी, स्वच्छ तथा स्त्रियों के निकट भीठे वचन बोलनेवाला हो, परंतु उनके वश में कभी न हो ।

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः ।

स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः ॥११॥

स्त्रियां घर की लक्ष्मी कही गई हैं, वे अत्यन्त सौभाग्यशालिनी, पूजा के योग्य, पवित्र तथा घर की शोभा हैं अतः इनकी विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिए।

पितुरन्तःपुरं दद्यान्मातुर्दद्यान्महानसम् ।
गोषु चात्मसमं दद्यात् स्वयमेव कृषिं व्रजेत् ॥12॥

अन्तःपुर की रक्षा का कार्य पिता को सौंप दे, रसोई-घर का प्रबन्ध माता के हाथ में दे दे, गौओं की सेवा में अपने समान व्यक्ति को नियुक्त करे और कृषि का कार्य स्वयं करे।

भृत्यैर्वाणिज्यचारं च पुत्रैः सेवेत च द्विजान् ।
अद्रभ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितमा ।
तेषां सर्वत्रंगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥13॥

सेवकों द्वारा वाणिज्य-व्यापार करे और पुत्रों के द्वारा ब्राह्मण की सेवा करे। जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय और पत्थर से लोहा पैदा हुआ है। इनका तेज सर्वत्र व्याप्त होने पर भी अपने उत्पत्ति स्थान में शान्त हो जाता है।

नित्यं सन्तः कुले जाताः पावकोपमतेजसः ॥14॥
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेग्निरिव शेरते ।

अच्छे कुल में उत्पन्न, अग्नि के समान तेजस्वी, क्षमाशील और विकारशून्य संत पुरुष सदा काष्ठ में अग्नि की भांति शांतभाव से स्थित रहते हैं।

यस्य मन्त्रं न जानन्ति बाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये ॥15॥
स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते ।

जिस राजा के मन्त्री को उसके बहिरंग एवं अन्तरंग सभासद् तक नहीं जानते, सब ओर दृष्टि करनेवाला वह राजा चिरकाल तक ऐश्वर्य का उपभोग करता है।

करिष्यन् प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत् ॥16॥
धर्मकामार्थकार्याणि तथा मन्त्रो न भिद्यते ॥

धर्म, काम और अर्थसम्बन्धी कार्यों को करने से पहले न बतावे, करके ही दिखावे। ऐसा करने से अपनी मन्त्रणा दूसरों पर प्रकट नहीं होती।

गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ॥17॥
अरण्ये निःशलाके वा तत्र मन्त्रोऽभिधीयते ।

पर्वत की चोटी अथवा राजमहल पर चढ़कर एकान्त स्थान में जाकर या जंगल में तृण आदि से अनावृत स्थान पर मन्त्रणा करनी चाहिए।

नासुहृत् परमं मन्त्रं भारताहति वेदितुम् ॥18॥
अपण्डितो वापि सुहृत् पण्डितो वाप्यनात्मवान् ।

भारत! जो मित्र नहीं, मित्र होने पर पण्डित न हो, पण्डित होने पर भी जिसका मन वश में न हो, वह अपना गुप्त मन्त्र जानने के योग्य नहीं है।

नापरीक्ष्य महीपालः कुर्यात् सचिवमात्मनः ॥19॥

राजा अच्छी तरह परीक्षा किए बिना किसी को अपना मन्त्री न बनावे।

अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च ।

कृतानि सर्वकार्याणि यस्य पारिषदा विदुः ॥20॥

धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तमः ।

गूढमन्त्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥21॥

क्योंकि धन की प्राप्ति और मन्त्र की रक्षा का भार मन्त्री पर ही रहता है। जिसके धर्म, अर्थ और कामविषयक सभी कार्यों को पूर्ण होने के बाद ही सभासद्गण जान पाते हैं, वही राजा समस्त राजाओं में श्रेष्ठ है। अपने मन्त्र को गुप्त रखनेवाले उस राजा को निःसंदेह सिद्धि प्राप्त होती है।

अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति ।

स तेषां विपरिभ्रंशाद् भ्रंश्यते जीवितादपि ॥22॥

जो मोहवश बुरे कर्म करता है, वह उन कार्यों का विपरीत परिणाम होने से अपने जीवन से भी हाथ धो बैठता है।

कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम् ।

तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम् ॥23॥

उत्तम कर्मों का अनुष्ठान तो सुख देनेवाला होता है, किंतु उन्हीं का अनुष्ठान न किया जाए तो वह पश्चात्ताप का कारण माना गया है।

अनधीत्य यथा वेदान्न विप्रः श्राद्धमर्हति ।

एवमश्रुतषाड्गुण्यो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥24॥

जैसे वेदों को पढ़े बिना ब्राह्मण श्राद्ध का अधिकारी नहीं होता, उसी प्रकार सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय नामक छः गुणों को जाने

बिना कोई गुप्त मन्त्रणा सुनने का अधिकारी नहीं होता ।

स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य

षाड्गुण्यविदितात्मनः ।

अनवज्ञातशीलस्य

स्वाधीना

पृथिवी

नृपः ॥25॥

राजन्! जो सन्धि-विग्रह आदि छः गुणों की जानकारी के कारण प्रसिद्ध है, स्थिति, वृद्धि और हास को जानता है तथा जिसके स्वभाव की सब लोग प्रशंसा करते हैं, उसी राजा के अधीन पृथ्वी रहती है ।

अमोघक्रोधहर्षस्य

स्वयं

कृत्यान्ववेक्षिणः ।

आत्मप्रत्ययकोशस्य

वसुदैव

वसुन्धरा ॥26॥

जिसके क्रोध और हर्ष व्यर्थ नहीं जाते, जो आवश्यक कार्यों की स्वयं देखभाल करता है और खजाने की भी स्वयं जानकारी रखता है, उसकी पृथ्वी पर्याप्त धन देनेवाली ही होती है ।

नाममात्रेण तुष्येत छत्रेण च महीपतिः ।

भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान्नैकः सर्वहरो भवेत् ॥27॥

भूपति को चाहिए कि अपने 'राजा' नाम से और राजोचित 'छत्र' धारण से संतुष्ट रहे । सेवकों को पर्याप्त धन दे, सब अकेले ही न हड़प ले ।

ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्ता वेद स्त्रियं तथा ।

अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च ॥28॥

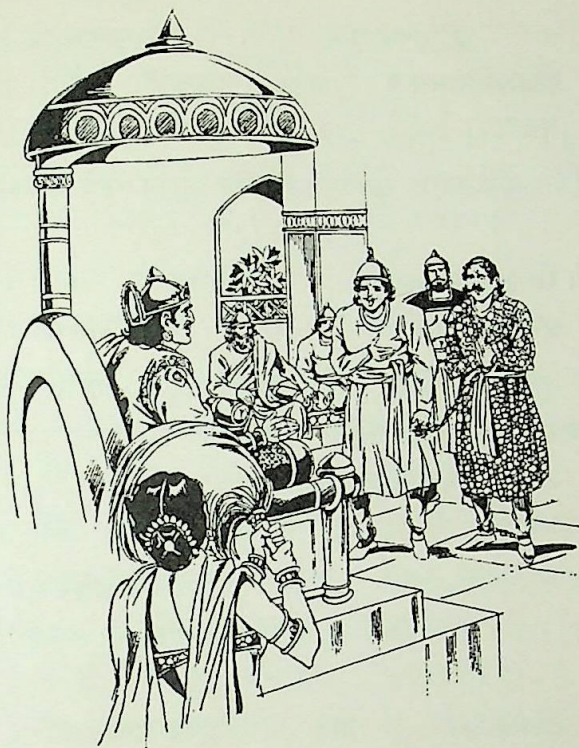
ब्राह्मण को ब्राह्मण जानता है, स्त्री को उसका पति जानता है, मन्त्री को राजा जानता है और राजा को भी राजा ही जानता है ।

न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वश्यतां गतः ।

न्यग् भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद् बले सतिः ।

अहतास्त्रि भयं तस्माज्जायते नचिरादिव ॥29॥

वश में आए हुए वध योग्य शत्रु को कभी छोड़ना नहीं चाहिए । यदि अपना बल अधिक न हो तो नम्र होकर उसके पास समय बिताना चाहिए और बल होने पर उसे मार ही डालना चाहिए क्योंकि यदि शत्रु मारा न गया तो उससे शीघ्र ही भय उपस्थित होता है ।



दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च ।
नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च ॥30॥

देवता, ब्राह्मण, राजा, वृद्ध, बालक और रोगी पर होनेवाले क्रोध को प्रयत्नपूर्वक रोकना चाहिए ।

निरर्थ कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम् ।
कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते ॥31॥

निरर्थक कलह करना मूर्खों का काम है, बुद्धिमान् पुरुष को इसका त्याग करना चाहिए । ऐसा करने से उसे लोक में यश मिलता है और अनर्थ का सामना नहीं करना पड़ता ।

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्डं पतिमिव स्त्रियः ॥32॥

जिसके प्रसन्न होने का कोई फल नहीं तथा जिसका क्रोध भी व्यर्थ होता है, ऐसे राजा को प्रजा उसी भांति नहीं चाहती, जैसे स्त्री नपुंसक पति को ।

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये ।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः ॥३३॥

बुद्धि से धन प्राप्त होता है और मूर्खता दरिद्रता का कारण है—ऐसा कोई नियम नहीं है । संसार-चक्र के वृत्तान्त को केवल विद्वान् पुरुष ही जानते हैं, दूसरे लोग नहीं ।

विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्च भारत ।
धनाभिजातवृद्धांश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते ॥३४॥

भारत! मूर्ख मनुष्य विद्या, शील, अवस्था, बुद्धि, धन और कुल में बड़े माननीय पुरुष का सदा अनादर किया करता है ।

अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम् ।
अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा ॥३५॥

जिसका चरित्र निन्दनीय है, जो मूर्ख, गुणों में दोष देखनेवाला अधार्मिक, बुरे वचन बोलनेवाला और क्रोधी है, उसके ऊपर शीघ्र ही अनर्थ (संकट) टूट पड़ते हैं ।

अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः ।
आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक्प्रणिहिता च वाक् ॥३६॥

ठगी न करना, दान देना, बात पर कायम रहना और अच्छी तरह कही हुई हित की बात—ये सब सम्पूर्ण भूतों को अपना बना लेते हैं ।

अविसंवादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजुः ।
अपिसंक्षीणकोशोऽपि लभते परिवारणम् ॥३७॥

किसी को भी धोखा न देनेवाला, चतुर, कृतज्ञ, बुद्धिमान् और सरल राजा खजाना खत्म हो जाने पर भी सहायकों को पा जाता है, अर्थात् उसे सहायक मिल जाते हैं ।

धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा ।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः ॥३८॥

धैर्य, मनोनिग्रह, इन्द्रियसंयम, पवित्रता, दया, कोमल वाणी और मित्र से द्रोह न करना—ये सात बातें लक्ष्मी को बढ़ानेवाली होती हैं ।

असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः ।
तादृङ्गराधिपो लोके वर्जनीयो नराधिपः ॥39॥

राजन्! जो अपने आश्रितों में धन का ठीक-ठीक वंटवारा नहीं करता तथा जो दुष्ट, कृतघ्न और निर्लज्ज है, ऐसा राजा इस लोक में त्याग देने योग्य है।

न च रात्रौ सुखं शेते ससर्प इव वेश्मनि ।
यः कोपयति निर्दोषं सदोषोऽभ्यन्तरं जनम् ॥40॥

जो स्वयं दोषी होकर भी निर्दोष आत्मीय व्यक्ति को कुपित करता है, वह सर्पयुक्त घर में रहनेवाले मनुष्य की भांति रात में सुख से नहीं सो सकता।

येषु दुष्टेषु दोषः स्याद् योगक्षेमस्य भारत ।
सदा प्रसादनं तेषां देवतानामिवाचरेत् ॥41॥

भारत! जिनके ऊपर दोषारोपण करने से योग और क्षेम में बाधा आती हो, उन लोगों को देवता की भांति सदा प्रसन्न रखना चाहिए।

येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च ।
ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः ॥42॥

जो धन आदि पदार्थ स्त्री, प्रमादी, पतित और नीच पुरुषों के हाथ में सौंप दिए जाते हैं, वे संशय में पड़ जाते हैं।

यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता ।
मज्जन्ति तेऽवशा राजन् नद्यामश्मप्लवा इव ॥43॥

राजन्! जहाँ का शासन स्त्री, जुआरी और बालक के हाथ है, वहाँ के लोग नदी में पत्थर की नाव पर बैठनेवालों की भांति विपत्ति के समुद्र में डूब जाते हैं।

प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत ।
तानहं पण्डितान् मन्ये विशेषा हि प्रसङ्गितः ॥44॥

जो लोग जितना आवश्यक है, उतने ही काम में लगे रहते हैं, अधिक में हाथ नहीं डालते, उन्हें मैं पण्डित मानता हूँ, क्योंकि अधिक में हाथ डालना संघर्ष का कारण होता है।

यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशसन्ति चारणाः ।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः ॥45॥

जुआरी जिसकी तारीफ़ करते हैं, चारण जिसकी प्रशंसा का गान करते हैं

और वेश्याएं जिसकी बड़ाई किया करती हैं, वह मनुष्य जीता ही मुर्दे के समान है।

हित्वा तां परमेष्वासान् पाण्डवानमितौजसः ।

आहितं भारतैश्वर्यं त्वया दुर्योधने महत् ॥४६॥

भारत! आपने उन महान् धनुर्धर और अत्यन्त तेजस्वी पाण्डवों को छोड़कर यह महान् ऐश्वर्य का भार दुर्योधन के ऊपर रख दिया है।

तं द्रक्ष्यसि परिभ्रष्टं तस्मात् त्वमचिरादिव ।

ऐश्वर्यमदसम्मूढं बलिं लोकत्रयादिव ॥४७॥

इसलिए आप शीघ्र ही उस ऐश्वर्यमद के मूढ़ दुर्योधन को त्रिभुवन के साम्राज्य से गिरे हुए बलि की भांति इस राज्य से भ्रष्ट होते देखिएगा।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि

विदुरनीतिवाक्ये अष्टात्रिंशोऽध्यायः ।

सातवां अध्याय

सार संक्षेप

- मनुष्य प्रारब्ध के अधीन है—यह धृतराष्ट्र का कथन ।
- विदुर का उपदेश—समय के विपरीत बोलने से अपमान, कौन प्रिय होता है, प्रिय और अप्रिय व्यक्ति के कार्यों में दृष्टिभेद ।
- एक दुर्योधन के न त्यागने से सौ पुत्रों के नाश की सम्भावना ।
- क्षय और बुद्धि की व्याख्या ।
- गुणहीन धनियों के त्याग की आज्ञा, धृतराष्ट्र का पुत्र को त्यागने में अपनी असमर्थता बताना ।
- गुणवान् और विनयशील का स्वभाव, दुष्टों से लेन-देन करने में दोष तथा उनको साथ रखने की भी निन्दा ।
- महान् दोषों से युक्त पुरुष त्याज्य हैं, नीच पुरुषों का प्रेम नश्वर होता है, नीच का स्वभाव और नीच पुरुषों को दूर से ही त्याग देने की प्रेरणा ।
- जाति-भाइयों की रक्षा और सत्कार का महत्त्व बताते हुए उनसे मिलकर रहने और पाण्डवों को उनका न्यायोचित हक देने के लिए धृतराष्ट्र से विदुरजी का अनुरोध ।
- कौन दीर्घकाल तक यश का भागी होता है, कौन-सा ज्ञान व्यर्थ है, किसका अभ्युदय और किसका पतन होता है ।
- मंत्रभेद के छः द्वार और उन्हें बंद रखने का महत्त्व ।
- शास्त्रज्ञान और वृद्धों की सेवा का महत्त्व, कौन वस्तु कहाँ नष्ट होती है और बुद्धिमान् पुरुष कैसे मैत्री करे ।

- ❑ किस गुण से किस अवगुण का नाश होता है और कुल की परीक्षा कैसे की जाती है।
- ❑ स्वतः प्राप्त भोग सामग्री का विरोध न करे, कैसे सुहृद् की सर्वथा रक्षा करनी चाहिए, कौन सैकड़ों कुलीनों से बढ़कर है और किनकी मित्रता कभी नष्ट नहीं होती।
- ❑ छोटी बुद्धिवाले को त्यागने की आवश्यकता, किनके साथ मित्रता न करे और मित्र कैसा होना चाहिए।
- ❑ इन्द्रियों को सर्वथा रोकने अथवा बिल्कुल खुली छोड़ देने से हानि, आयु बढ़ानेवाले सद्गुण, वीर पुरुषों का व्रत क्या है, कौन मनुष्य कभी अर्थ से हीन नहीं होता तथा कल्याणकारी कार्य और उन्हें करने की आवश्यकता।
- ❑ अनिर्वेद का महत्व तथा क्षमा की महिमा।
- ❑ किस सुख का यथेष्ट सेवन करे, किनके यहाँ लक्ष्मी का वास नहीं होता, दुष्ट पुरुषों के बर्ताव, लक्ष्मी किसके पास भय के मारे नहीं जाती तथा राजलक्ष्मी का स्वभाव कैसा होता है।
- ❑ किसका क्या फल है, किस कर्म का फल परलोक में नहीं मिलता, सत्त्वसम्पन्न पुरुषों की निर्भयता तथा उन्नति के मूल हेतु।
- ❑ किनका कौन-सा बल है, व्रत को नष्ट न करनेवाली आठ वस्तुएं तथा संक्षेप में धर्म का स्वरूप।
- ❑ किससे किसको जीते, किनपर विश्वास न करे, नित्य गुरुजनों को प्रणाम करने से लाभ, कैसे धन की ओर मन न लगावे और कौन-कौन शोचनीय हैं।
- ❑ किसके लिए क्या बुढ़ापा है, किसका क्या मूल है और किससे किसको जीतने की चेष्टा करे।
- ❑ किसका जीवन सफल है, लोभ या इच्छा का परित्याग करे, पृथ्वी के सम्पूर्ण भोग एक पुरुष के लिए पर्याप्त नहीं हैं, धृतराष्ट्र से अपने पुत्रों और पाण्डवों पर समान बर्ताव करने का अनुरोध।

सातवां अध्याय विस्तार से

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते कीर्तिरायुर्यशोबलम् ॥



जो नित्य गुरुजनों को प्रणाम करता है और वृद्ध
पुरुषों की सेवा में लगा रहता है, उसकी कीर्ति,
आयु, यश व बल—ये चारों बढ़ते हैं।

धृतराष्ट्र उवाच

अनीश्वरोऽयं पुरुषो भवाभवे सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा ।

धात्रा तु दिष्टस्य वशे कृतोऽयं तस्माद् वद त्वं श्रवणे धृतोऽहम् ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर! यह पुरुष ऐश्वर्य की प्राप्ति और नाश में स्वतन्त्र नहीं है। ब्रह्मा ने धागे से बंधी हुई कठपुतली की भाँति इसे प्रारब्ध के अधीन कर रखा है, इसलिए तुम कहते चलो, मैं सुनने के लिए धैर्य धारण किए बैठ हूँ।

विदुर उवाच

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ।

लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च भारत ॥२॥

विदुरजी बोले—भारत! समय के विपरीत यदि बृहस्पति भी कुछ बोलें, तो उनका अपमान ही होगा और उनकी बुद्धि की भी अवज्ञा ही होगी।

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः ।

मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः ॥३॥

संसार में कोई मनुष्य दान देने से प्रिय होता है, दूसरा प्रिय वचन बोलने से प्रिय है और तीसरा मन्त्र तथा औषध के बल से प्रिय होता है, किंतु जो वास्तव में प्रिय है, वह तो सदा प्रिय ही है।

द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः ।

प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह ॥४॥

जिससे द्वेष हो जाता है, वह न साधु, न विद्वान् और न बुद्धिमान् ही जान पड़ता है, प्रियतम के तो सभी कर्म शुभ ही प्रतीत होते हैं और दुश्मन के सभी काम पापमय।

उक्तं मया जातमात्रेऽपि राजन् दुर्योधनं त्यज पुत्रं त्वमेकम् ।

तस्य त्यागात् पुत्रशतस्य वृद्धिरस्यत्यागत् पुत्रशतस्य नाशः ॥५॥

राजन्! दुर्योधन के जन्म लेते ही मैंने कहा था कि केवल इसी एक पुत्र को तुम त्याग दो। इसके त्याग से सौ पुत्रों की वृद्धि होगी और इसका त्याग न करने से सौ पुत्रों का नाश होगा।

न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत् ।

क्षयोऽपि बहु मन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत् ॥६॥

जो वृद्धि भविष्य में नाश का कारण बने, उसे अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए और उस क्षय का बहुत आदर करना चाहिए, जो आगे चलकर अभ्युदय का कारण हो।

न स क्षयो महाराज यः क्षयो वृद्धिमावहेत् ।

क्षयः स त्विह मन्तव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत् ॥7॥

महाराज! वास्तव में जो क्षय वृद्धि का कारण होता है, वह क्षय ही नहीं है, किंतु उस लाभ को भी क्षय ही मानना चाहिए, जिसे पाने से बहुतों का नाश हो जाए।

समृद्धा गुणतः केचिद् भवन्ति धनतोऽपरे ।

धनवृद्धान् गुणैर्हीनान् धृतराष्ट्र विवर्जय ॥8॥

धृतराष्ट्र! कुछ लोग गुण के धनी होते हैं और कुछ लोग धन के धनी। जो धन के धनी होते हुए भी गुणों के कंगाल हैं, उन्हें सर्वथा त्याग दीजिए।

धृतराष्ट्र उवाच

सर्वं त्वमायतीयुक्तं भाषसे प्राज्ञसम्मतम् ।

न चोत्सहे सुतं त्यक्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥9॥

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर! तुम जो कुछ कह रहे हो, परिणाम में हितकर है, बुद्धिमान् लोग इसका अनुमोदन करते हैं। यह भी ठीक है कि जिस ओर धर्म होता है, उसी पक्ष की जीत होती है, तो भी मैं अपने बेटे का त्याग नहीं कर सकता।

विदुर उवाच

अतीवगुणसम्पन्नो न जातु विनयाच्चितः ।

सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमुपेक्षते ॥10॥

विदुरजी बोले—जो अधिक गुणों से सम्पन्न और विनयी है, वह प्राणियों का तनिक भी संहार होते देख उनकी कभी उपेक्षा नहीं कर सकता।

परापवादनिरताः परदुःखोदयेषु च ।

परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः ॥11॥

सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद् भयम्

अर्थादाने महान् दोषः प्रदाने च महद् भयम् ॥12॥

जो दूसरों की निन्दा में ही लगे रहते हैं, दूसरों को दुःख देने और आपस में फूट डालने के लिए सदा उत्साह के साथ प्रयत्न करते हैं, जिनका दर्शन दोष से

भरा (अशुभ) है और जिनके साथ रहने में भी बहुत बड़ा खतरा है, ऐसे लोगों से धन लेने में महान् दोष है और उन्हें देने में बहुत बड़ा भय है ।

ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः ।

ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः ॥13॥

दूसरों में फूट डालने का जिनका स्वभाव है, जो कामी, निर्लज्ज, शठ और प्रसिद्ध पापी हैं, वे साथ रखने के अयोग्य—निन्दित माने गये हैं ।

युक्तांश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत् ।

निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति ॥14॥

या चैव फलनिवृत्तिः सौहृदे चैव यत् सुखम् ।

उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त और भी जो महान् दोष हैं, उनसे युक्त मनुष्यों का त्याग कर देना चाहिए । सौहार्दभाव निवृत्त हो जाने पर नीच पुरुषों का प्रेम नष्ट हो जाता है, उस सौहार्द से होनेवाले फल की सिद्धि और सुख का भी नाश हो जाता है ।

यतते चापवादाय यत्नमारभते क्षये ॥15॥

अल्पेऽप्यपकृते मोहान् शान्तिमधिगच्छति ।

फिर वह नीच पुरुष निन्दा करने के लिए यत्न करता है, थोड़ा भी अपराध हो जाने पर मोहवश विनाश के लिए उद्योग आरम्भ कर देता है । उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती ।

तादृशैः संगतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः ॥16॥

निशम्य निपुणं बुद्ध्या विद्वान् दूराद् विवर्जयेत् ।

वैसे नीच, क्रूर तथा अजितेन्द्रिय पुरुषों से होनेवाले संग पर अपनी बुद्धि से पूर्ण विचार करके विद्वान् पुरुष उसे दूर से ही त्याग दे ।

यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम् ॥17॥

स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्त्यमश्नुते ।

जो अपने कुटुम्बी, दरिद्र, दीन तथा रोगी पर अनुग्रह करता है, वह पुत्र और पशुओं से समृद्ध होता है और अनन्त कल्याण का अनुभव करता है ।

ज्ञातयो वर्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम् ॥18॥

कुलवृद्धिं च राजेन्द्र तस्मात् साधु समाचर ।

राजेन्द्र! जो लोग अपने भले की इच्छा करते हैं, उन्हें अपने जाति-भाइयों को उन्नतिशील बनाना चाहिए, इसलिए आप भली-भाँति अपने कुल की वृद्धि करें।

श्रेयसा योक्ष्यते राजन् कुर्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम् ॥19॥

राजन्! जो अपने कुटुम्बीजनों का सत्कार करता है, वह कल्याण का भागी होता है।

विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ ।

किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकाङ्क्षिणः ॥20॥

भरतश्रेष्ठ! अपने कुटुम्ब के लोग गुणहीन हों, तो भी उनकी रक्षा करनी चाहिए। फिर जो आपके कृपाभिलाषी एवं गुणवान् हैं, उनकी तो बात ही क्या है!

प्रसादं कुरु वीराणां पाण्डवानां विशाम्यते ।

दीयन्तां ग्रामकाः केचित् तेषां वृत्त्यर्थमीश्वर ॥21॥

राजन्! आप समर्थ हैं, वीर पाण्डवों पर कृपा कीजिए और उनकी जीविका के लिए कुछ गांव दे दीजिए।

एवं लोके यशः प्राप्तं भविष्यति नराधिप ।

वृद्धेन हि त्वया कार्यं पुत्राणां तात शासनम् ॥22॥

नरेश्वर! ऐसा करने से आपको इस संसार में यश प्राप्त होगा। तात! आप वृद्ध हैं, इसलिए आपको अपने पुत्रों पर शासन करना चाहिए।

मया चापि हितं वाच्यं विद्धि मां त्वद्वितैषिणम् ।

ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्तव्यः शुभार्थिना ।

सुखानि सह भोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ ॥23॥

भरतश्रेष्ठ! मुझे भी आपके हित की बात कहनी चाहिए। आप मुझे अपना हितैषी समझें। तात! शुभ चाहनेवाले को अपने जाति-भाइयों के साथ कलह नहीं करना चाहिए, बल्कि उनके साथ मिलकर सुख का उपभोग करना चाहिए।

सम्भोजनं संकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम् ।

ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन ॥24॥

जाति-भाइयों के साथ परस्पर भोजन, बातचीत एवं प्रेम करना ही कर्तव्य है, उनके साथ कभी विरोध नहीं करना चाहिए।



ज्ञातयस्यतारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च ।
सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च ॥25॥

इस जगत् में जाति-भाई तारते और डुबाते भी हैं। उनमें जो सदाचारी हैं, वे तो तारते हैं और दुराचारी डुबा देते हैं।

सुवृत्तो भव राजेन्द्र पाण्डवान् प्रति मानद ।
अघर्षणीयः शत्रूणां तैर्वृतस्त्वं भविष्यसि ॥26॥

राजेन्द्र! आप पाण्डवों के प्रति सद् व्यवहार करें। मानद! उनसे सुरक्षित होकर आप शत्रुओं के आक्रमण से बचे रहेंगे।

श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति ।
दिग्धहस्तं मृग इव स एनस्तस्य विन्दति ॥27॥

विषैले बाण हाथ में लिये हुए व्याध के पास पहुँचकर जैसे मृग को कष्ट भोगना पड़ता है, उसी प्रकार जो जातीय बन्धु अपने धनी बन्धु के पास पहुँचकर दुःख पाता है, उसके पाप का भागी वह धनी होता है।

पश्चादपि नरश्रेष्ठ तव तापो भविष्यति ।
तान् वा हतान् सुतान् वापि श्रुत्वा तदनुचिन्तय ॥28॥

नरश्रेष्ठ! आप पाण्डवों को अथवा अपने पुत्रों के मारे गए सुनकर पीछे संताप करेंगे। अतः इस बात का पहले ही विचार कर लीजिए।

येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा ।

आदावेव न तत् कुर्यादध्रुवे जीविते सति ॥29॥

इस जीवन का कोई ठिकाना नहीं है। जिस कर्म के करने से अन्त में खाट पर बैठकर पछताना पड़े, उसको पहले से ही नहीं करना चाहिए।

न कश्चिन्नापनयते पुमानन्यत्र भार्गवात् ।

शेषसम्प्रतिपत्तिस्तु बुद्धिमत्त्वेव निष्ठति ॥30॥

शुक्राचार्य के सिवा दूसरा कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो नीति का उल्लंघन नहीं करता, अतः जो बीत गया सो बीत गया। अब शेष कर्तव्य का विचार आप जैसे बुद्धिमान् पुरुषों पर ही निर्भर है।

दुर्योधनेन यद्येतत् पापं तेषु पुरा कृतम् ।

त्वया तत् कुलवृद्धेन प्रत्यानेयं नरेश्वर ॥31॥

नरेश्वर! दुर्योधन ने पहले यदि पाण्डवों के प्रति यह अपराध किया है, तो आप ही इस कुल में बड़े-बूढ़े हैं, आपके द्वारा उसका मार्जन हो जाना चाहिए।

तांस्त्वं पदे प्रतिष्ठाय लोके विगतकल्मषः ।

भविष्यसि नरश्रेष्ठ पूजनीयो मनीषिणाम् ॥32॥

नरश्रेष्ठ! यदि आप उनको राजपद पर स्थापित कर देंगे, तो संसार में आपका कलंक धुल जाएगा और आप बुद्धिमान् पुरुषों के माननीय हो जाएंगे।

सुव्याहतानि धीराणां फलतः परिचिन्त्य यः ।

अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति ॥33॥

जो धीर पुरुषों के वचनों के परिणाम पर विचार करके उन्हें कार्यरूप में परिणत करता है, वह चिरकाल तक यश का भागी बना रहता है।

असम्पुण्यपुक्तं हि ज्ञानं सुकुशलैरपि ।

उपलभ्यं चाविदितं विदितं चाननुष्ठितम् ॥34॥

कुशल विद्वानों के द्वारा भी उपदेश किया हुआ ज्ञान व्यर्थ है, यदि उससे कर्तव्य का ज्ञान न हुआ अथवा ज्ञान होने पर भी उसका अनुष्ठान न हुआ।

पापोदयफलं विद्वान् यो नारभति वर्धते ।

यस्तु पूर्वकृतं पापमविमृश्यानुवर्तते ।

अगाधपट्टे दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते ॥35॥

जो विद्वान् पापरूप फल देनेवाले कर्मों का आरम्भ नहीं करता, वह बढ़ता है, किंतु जो पूर्व में किए पापों का विचार न करके उन्हीं का अनुसरण करता है, वह खोटी बुद्धिवाला मनुष्य अगाध कीचड़ से भरे हुए बीहड़ नरक में गिराया जाता है।

मन्त्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वा राणीमानि लक्षयेत् ।

अर्थसंततिकामश्च रक्षेदेतानि नित्यशः ॥36॥

मदं स्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसम्भवम् ।

दुष्टामात्येषु विश्रम्भं दूताच्चाकुशलादपि ॥37॥

बुद्धिमान् पुरुष मन्त्रभेद के इन छः द्वारों को जाने और धन को रक्षित रखने की इच्छा से इन्हें सदा बंद रखे—नशे का सेवन, निद्रा, आवश्यक बातों की जानकारी न रखना, अपने नेत्र-मुख आदि का विकार, दुष्ट मन्त्रियों में विश्वास और मूर्ख दूत पर भी भरोसा रखना।

द्वा राण्येतानि यो ज्ञात्वा संवृणोति सदा नृप ।

त्रिवर्गाचरणे युक्तः स शत्रूनधितिष्ठति ॥38॥

राजन्! जो इन द्वारों को जानकर सदा बंद किए रहता है, वह अर्थ, धर्म और काम के सेवन में लगा रहकर शत्रुओं को भी वश में कर लेता है।

न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धाननुपसेव्य वा ।

धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि ॥39॥

बृहस्पति के समान मनुष्य भी शास्त्रज्ञान अथवा वृद्धों की सेवा किए बिना धर्म और अर्थ का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता।

नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति ।

अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमननिकम् ॥40॥

समुद्र में गिरी हुई वस्तु नष्ट हो जाती है, जो सुनता नहीं, उससे कही हुई बात नष्ट हो जाती है, अजितेन्द्रिय पुरुष का शास्त्रज्ञान और राख में किया हुआ हवन भी नष्ट ही है।

मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्ध्या सम्पाद्य चासकृत् ।

श्रुत्वा दृष्ट्वाथ विज्ञाय प्राज्ञैर्मैत्रीं समाचरेत् ॥41॥

बुद्धिमान् पुरुष बुद्धि से जाँचकर अपने अनुभव से बार-बार उनकी योग्यता का निश्चय करे फिर दूसरों से सुनकर और स्वयं देखकर भली-भाँति विचार करके विद्वानों के साथ मित्रता करे ।

अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः ।

हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥42॥

विनय-भाव अपयश का नाश करता है, पराक्रम अनर्थ को दूर करता है, क्षमा सदा ही क्रोध का नाश करती है और सदाचार कुलक्षण का अंत करता है ।

परिच्छेदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया ।

परिक्षेत कुलं राजन् भोजनाच्छादनेन च ॥43॥

राजन्! नाना प्रकार की भोगसामग्री, माता, घर, स्वागत-सत्कार के ढंग और भोजन तथा वस्त्र के द्वारा कुल की परीक्षा करे ।

उपस्थितस्य कामस्य प्रतिवादो न विद्यते ।

अपि निर्मुक्तदेहस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥44॥

देहाभिमान से रहित पुरुष के पास भी यदि न्याययुक्त पदार्थ स्वतः उपस्थित हो तो वह उसका विरोध नहीं करता, फिर कामासक्त मनुष्य के लिए तो कहना ही क्या है!

प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम् ।

मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत् ॥45॥

जो विद्वानों की सेवा में रहनेवाला, वैद्य, धार्मिक, देखने में सुन्दर, मित्रों से युक्त तथा मधुरभाषी हो, ऐसे सुहृद् की सर्वथा रक्षा करनी चाहिए ।

दुष्कुलीनः कुलीनो वा मर्यादां यो न लंघयेत् ।

धमपेक्षी मृदुहीमान् स कुलीनशताद् वरः ॥46॥

अधम कुल में उत्पन्न हुआ या उत्तम कुल में—जो मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, धर्म की अपेक्षा रखता है, कोमल स्वभाववाला तथा सलज्ज है, वह सैकड़ों कुलीनों से बड़कर है ।

ययोश्चित्तेन वा चित्तं निभृतं निभृतेन वा ।

समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यति ॥47॥

जिन दो मनुष्यों का चित्त से चित्त, गुप्त रहस्य से गुप्त रहस्य और बुद्धि से बुद्धि मिल जाती है, उनकी मित्रता कभी नष्ट नहीं होती ।

दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव ।
विवर्जयित मेधावी तस्मिन् मैत्री प्रणश्यति ॥48॥

मेधावी पुरुषों को चाहिए कि दुर्बुद्धि एवं विचारशक्ति से हीन पुरुष का तृण से ढके हुए कुएं की भांति परित्याग कर दे, क्योंकि उसके साथ की हुई मित्रता नष्ट हो जाती है ।

अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च ।
तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद् बुधः ॥49॥

विद्वान् पुरुष को उचित है कि अभिमानी, मूर्ख, क्रोधी, साहसिक और धर्महीन पुरुषों के साथ मित्रता न करे ।

कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम् ।
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते ॥50॥

मित्र तो ऐसा होना चाहिए जो कृतज्ञ, धार्मिक, सत्यवादी, उदार, दृढ़ अनुराग रखनेवाला, जितेन्द्रिय, मर्यादा के भीतर रहनेवाला और मैत्री का त्याग न करनेवाला हो ।

इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनापि विशिष्यते ।
अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद् दैवतान्यपि ॥51॥

इन्द्रियों को सर्वथा रोक रखना तो मृत्यु से भी बढ़कर कठिन है और उन्हें बिल्कुल खुली छोड़ देना देवताओं का नाश कर देता है ।

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः ।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना ॥52॥

सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति कोमलता का भाव, गुणों में दोष न देखना, क्षमा, धैर्य और मित्रों का अपमान न करना—ये सब गुण आयु को बढ़ानेवाले हैं—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ।

अपनीतं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते ।
मतिमास्थाय सुदृढं तदकापुरुषव्रतम् ॥53॥

जो अन्याय से नष्ट हुए धन को स्थिर बुद्धि का आश्रय ले अच्छी नीति से पुनः लौटा लाने की इच्छा करता है, वह वीर पुरुषों का-सा आचरण करता है ।

आयत्यां प्रतिकारजस्तदात्वे दृढनिश्चयः ।
अतीते कार्यशेषज्ञो नरोऽर्थेन प्रहीयते ॥54॥

जो आनेवाले दुःखों को रोकने का उपाय जानता है, वर्तमान-कालिक कर्तव्य के पालन में दृढ़ निश्चय रखनेवाला है और अतीत-काल में जो कर्तव्य शेष रह गया है, उसे भी जानता है, वह मनुष्य कभी अर्थ से हीन नहीं होता ।

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते ।
तदेवापहरत्येनं तस्मात् कल्याणमाचरेत् ॥55॥

मनुष्य मन, वाणी और कर्म से जिसका निरन्तर सेवन करता है, वह कार्य उस पुरुष को अपनी ओर खींच लेता है । इसलिए सदा कल्याणकारी कार्यों को ही करे ।

मङ्गलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम् ।
भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्णदर्शनम् ॥56॥

मांगलिक पदार्थों का स्पर्श, चित्तवृत्तियों का निरोध, शास्त्र का अभ्यास, उद्योगशीलता, सरलता और सत्पुरुषों का बारंबार दर्शन—ये सब कल्याणकारी हैं ।

अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च ।
महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानन्तमश्नुते ॥57॥

उद्योग में लगे रहना—उससे विरत न होना, धन, लाभ और कल्याण का मूल है । इसलिए उद्योग न छोड़नेवाला मनुष्य महान् हो जाता है और अत्यन्त सुख का उपभोग करता है ।

नातः श्रीमत्तरं किचिदन्यत् पथ्यतमं मतम् ।
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा ॥58॥

तात! समर्थ पुरुष के लिए सब जगह और सब समय में क्षमा के समान हितकारक और अत्यन्त श्रीसम्पन्न बनानेवाला उपाय दूसरा नहीं माना गया है ।

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात् ।
अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता ॥59॥

जो शक्तिहीन है, वह सब पर क्षमा करे ही, जो शक्तिमान् है वह भी धर्म के लिए क्षमा करे तथा जिसकी दृष्टि में अर्थ और अनर्थ दोनों समान हैं, उसके लिए तो क्षमा सदा ही हितकारिणी होती है ।

यत् सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते ।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत् ॥60॥

जिस सुख का सेवन करते रहने पर भी मनुष्य धर्म और अर्थ से भ्रष्ट नहीं होता, उसका यथेष्ट सेवन करे, किंतु मूढव्रत (आसक्ति एवं अन्यायपूर्वक) विषयसेवन न करे।

दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च ।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः ॥61॥

जो दुःख से पीड़ित, प्रमादी, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय और उत्साहरहित हैं, उनके यहाँ लक्ष्मी का वास नहीं होता।

आज्विन नरं युक्तमार्जवात् सव्यपत्रपम् ।
अशक्तं मन्यमानास्तु धर्षयन्ति कुबुद्धयः ॥62॥

दुष्ट बुद्धिवाले लोग सरलता से युक्त और सरलता के ही कारण लज्जाशील मनुष्य को अशक्त मानकर उसका तिरस्कार करते हैं।

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम् ।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥63॥

अत्यन्त श्रेष्ठ, अतिशय दानी, अति ही शूरवीर, अधिक व्रत-नियमों का पालन करनेवाले और बुद्धि के घमंड में चूर रहनेवाले मनुष्य के पास लक्ष्मी भय के मारे नहीं जाती।

न चातिगुणवत्स्वेषा नात्यन्तं निर्गुणेषु च ।
नैषा गुणान् कामयते नैर्गुण्यानानुरज्यते ।
उन्मत्ता गौरिवान्धाः श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते ॥64॥

यह न तो बहुत-से गुणों को चाहती है और न गुणहीन के प्रति ही अनुराग रखती है। उन्मत्त गौ की भांति यह अन्धी लक्ष्मी कहीं-कहीं ही ठहरती है।

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम् ।
रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम् ॥65॥

वेदों का फल है अग्निहोत्र करना, शास्त्राध्ययन का फल है सुशीलता और सदाचार, स्त्री का फल है रति-सुख और पुत्र की प्राप्ति तथा धन का फल है दान का उभयोः ।

अधर्मोपाजितैरर्थैः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।
न स तस्य फलं प्रेत्यभुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात् ॥66॥

जो अधर्म के द्वारा कमाये हुए धन से परलोकसाधक यज्ञादि कर्म करता है, वह मरने के पश्चात् उसके फल को नहीं पाता, क्योंकि उसका धन बुरे रास्ते से आया होता है।

कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे ।
उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम् ॥67॥

घोर जंगल में, दुर्गम मार्ग में, कठिन आपत्ति के समय, घबराहट में और प्रहार के लिए शस्त्र उठे रहने पर भी सत्त्व (मनोबल) सम्पन्न पुरुषों को भय नहीं होता।

उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः ।
समीक्ष्य च समारम्भी विद्धि मूलं भवस्य तु ॥68॥

उद्योग संयम, दक्षता, सावधानी, धैर्य, स्मृति और सोच-विचारकर कार्यारम्भ करना—इन्हें उन्नति का मूल मंत्र समझिए।

तपो बलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम् ।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम् ॥69॥

तपस्वियों का बल है तप, वेदवेत्ताओं का बल है वेद, असाधुओं का बल है हिंसा और गुणवानों का बल है क्षमा।

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वर्चनमौषधम् ॥70॥

जल, मूल, फल, दूध, घी, ब्राह्मण की इच्छापूर्ति, गुरु का वचन और औषध—ये आठ व्रत के नाशक नहीं होते।

न तत् परस्य सन्दध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः ।
संग्रहेणैष धर्मः स्यात् कामादन्यः प्रवर्तते ॥71॥

जो अपने प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरों के प्रति भी न करे। थोड़े में धर्म का यही स्वरूप है। इसके विपरीत जिसमें कामना से प्रवृत्ति होती है—वह तो अधर्म है।

अक्रोधेन जयेत् क्रोधमसाधुं साधुना जयेत् ।
जयेत् कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम् ॥72॥

अक्रोध से क्रोध को जीते, असाधु को सद् व्यवहार से वश में करे, कृपण को दान से जीते और झूठ पर सत्य से विजय प्राप्त करे।

स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि ।

चौरै कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके ॥73॥

स्त्री, धूर्त, आलसी, डरपोक, क्रोधी, पुरुषत्व के अभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिक का विश्वास नहीं करना चाहिए ।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।

चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते कीर्तिरायुर्यशो बलम् ॥74॥

जो नित्य गुरुजनों को प्रणाम करता है और वृद्ध पुरुषों की सेवा में लगा रहता है, उसकी कीर्ति, आयु, यश और बल—ये चारों बढ़ते हैं ।

अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा ।

अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥75॥

जो धन अत्यन्त क्लेश उठाने से, धर्म का उल्लंघन करने से अथवा शत्रु के सामने सिर झुकाने से प्राप्त होता हो, उसमें आप मन न लगाएं ।

अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम् ।

निराहाराः प्रजाः शोच्याः शोच्यं राष्ट्रमराजकम् ॥76॥

विद्याहीन पुरुष, संतानोत्पत्तिरहित स्त्री-प्रसंग, आहार न पानेवाली प्रजा और बिना राजा के राष्ट्र के लिए शोक करना चाहिए ।

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा ।

असम्भोगो जरा स्त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा ॥77॥

अधिक राह चलना देहधारियों के लिए दुःखरूप बुढ़ापा है, बराबर पानी गिरना पर्वतों का बुढ़ापा है, सम्भोग से वंचित रहना स्त्रियों के लिए बुढ़ापा है और वचनरूपी बाणों का आघात मन के लिए बुढ़ापा है ।

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम् ॥78॥

मलं पृथिव्या बाह्लीकाः पुरुषस्यानृतं मलम् ।

कौतूहलमला साध्वी विप्रवासमलाः स्त्रियः ॥79॥

अभ्यास न करना वेदों का मल है, ब्राह्मणोचित नियमों का पालन न करना ब्राह्मण का मल है, बाह्लीक देश (बलख-बुखारा) पृथ्वी का मल है तथा झूठ बोलना पुरुष का मल है, क्रीड़ा एवं हास-परिहास की उत्सुकता पतिव्रता स्त्री का मल है, और पति के बिना परदेश में रहना स्त्रीमात्र का मल है ।

सुवर्णस्यमलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु ।
 ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम् ॥८०॥

सोने का मल है चांदी, चांदी का मल है रांगा, रांगे का मल है सीसा और सीसे का मल है मल ।

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत् स्त्रियः ।
 नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत् ॥८१॥

सोकर नींद को जीतने की इच्छा न करे । कामोपभोग के द्वारा स्त्री को जीतने की इच्छा न करे, लकड़ी डालकर आग को जीतने की आशा न करे और अधिक पीकर मदिरा की आदत को जीतने का प्रयास न करे ।

यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः ।
 अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम् ॥८२॥

जिसका मित्र धन-दान के द्वारा वश में आ चुका है, शत्रु युद्ध में जीत लिये गये हैं और स्त्रियां खान-पान के द्वारा वशीभूत हो चुकी हैं, उसका जीवन सफल है ।

सहस्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा ।
 धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथञ्चिन्न जीव्यते ॥८३॥

जिनके पास हजार हैं, वे भी जीवित हैं, तथा जिनके पास सौ हैं, वे भी जीवित हैं, अतः महाराज धृतराष्ट्र ! आप अधिक का लोभ छोड़ दीजिए, इससे भी किसी तरह जीवन रहेगा ही ।

यत् पृथिव्यां ब्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
 नालमेकस्य तत् सर्वमिति पश्यन् मुह्यति ॥८४॥

इस पृथ्वी पर जो भी धान, जौ, सोना, पशु और स्त्रियां हैं, वे सब-के-सब एक पुरुष के लिए भी पूरे नहीं हैं—ऐसा विचार करनेवाला मनुष्य मोह में नहीं पड़ता ।

राजन् भूयो ब्रवीमि त्वां पुत्रेषु सममाचार ।
 समता यदि ते राजन् स्वेषु पाण्डुसुतेषु वा ॥८५॥

राजन् ! मैं फिर कहता हूं, यदि आपका अपने पुत्रों और पाण्डवों में समान भाव है तो उन सभी पुत्रों के साथ एक-सा बर्ताव कीजिए ।

इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि
 विदुरनीतिवाक्ये एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

आठवां अध्याय

सार संक्षेप

- किसको शीघ्र सुयश एवं सुख की प्राप्ति होती है, कौन दुःखों से मुक्त हो सुखपूर्वक सोता है और ब्रह्महत्या के समान तीन कुकर्म ।
- मृत्यु क्या है, लक्ष्मी वध कैसे होता है और विद्या के तीन शत्रु कौन हैं ।
- विद्यार्थियों के सात दोष, सुखार्थी या विद्यार्थी ।
- किसको किससे तृप्ति नहीं होती, कौन किसको नष्ट कर देता है और घर में रखने योग्य वस्तुएं ।
- जीवन के लिए भी धर्म का त्याग न करे तथा धर्म और संतोष की महत्ता ।
- एक दिन सभी मृत्यु के अधीन होते हैं, संसार के सगे-सम्बन्धी मृतक का साथ नहीं देते, कर्म ही उसके साथ जाता है, अतः धर्मसंग्रह की आवश्यकता ।
- अज्ञान से छूटने और जन्म-मृत्युरूप भय से बचने का उपाय ।
- कौन कभी मोह में नहीं पड़ता, किससे किसकी रक्षा करे तथा कौन ब्रह्मण ब्रह्मलोक से भ्रष्ट नहीं होता ।
- कौन क्षत्रिय ऊर्ध्वलोक में जाता है, कौन वैश्य स्वर्ग में दिव्य सुख भोगता है तथा कौन शूद्र स्वर्ग-सुख का अनुभव करता है ।
- युधिष्ठिर को क्षत्रिय धर्म में प्रतिष्ठित करने के लिए धृतराष्ट्र विदुर का अनुरोध, विदुर की बातें स्वीकार करते हुए भी धृतराष्ट्र का दुर्योधन के सामने अपनी विवशता बताना और प्रारब्ध को प्रबल एवं पुरुषार्थ को निरर्थक मानना ।

आठवां अध्याय विस्तार से

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना॥



ईधन से आग, नदियों से समुद्र,
समस्त प्राणियों से मृत्यु और पुरुषों
से कुलटा स्त्री कभी तृप्त नहीं होती।

विदुर उवाच

योऽभ्यर्चितः सद्भिभरसज्जमानः करोत्यर्थं शक्तिमहापयित्वा ।

क्षिप्रं यशस्तं समुपैति सन्तः मलं प्रसन्ना हि सुखाय सन्तः ॥१॥

विदुरजी कहते हैं—जो सज्जन पुरुषों से आदर पाकर आसक्तिरहित हो अपनी शक्ति के अनुसार अर्थ-साधन करता रहता है, उस श्रेष्ठ पुरुष को शीघ्र ही सुयश की प्राप्ति होती है। क्योंकि संत जिस पर प्रसन्न होते हैं, वह सदा सुखी रहता है।

महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं यः सन्त्यजत्यनपाकृष्ट एव ।

सुखं सुदुःखान्यवमुच्य शेते जीर्णा त्वचं सर्प इवावमुच्य ॥२॥

जो अधर्म से उपार्जित महान् धनराशि को उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना ही त्याग देता है, वह जैसे सांप अपनी पुरानी केंचुल को छोड़ता है उसी प्रकार दुःखों से मुक्त हो सुखपूर्वक शयन करता है।

अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम् ।

गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्याया ॥३॥

झूठ बोलकर उन्नति करना, राजा के पास तक चुगली करना, गुरु से भी मिथ्या आग्रह करना—ये तीन कार्य ब्रह्महत्या के समान हैं।

असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः ।

अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः ॥४॥

गुणों में दोष देखना एकदम मृत्यु के समान है, कठोर बोलना या निन्दा करना लक्ष्मी का वध है। सुनने की इच्छा का अभाव या सेवा का अभाव, उतावलापन और आत्मप्रशंसा—ये तीन विद्या के शत्रु हैं।

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च ।

स्तब्धता चाभिमानित्वं तथात्यागित्वमेव च ।

एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः ॥५॥

आलस्य, मद-मोह, चंचलता, गोष्ठी, उद्वण्डता, अभिमान और लोभ—ये सात विद्यार्थियों के लिए सदा ही दोष माने गये हैं।

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम् ।

सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम् ॥६॥

सुख चाहनेवाले को विद्या कहाँ से मिले। विद्या चाहनेवाले के लिए सुख नहीं है। सुख की चाह हो तो विद्या को छोड़े और विद्या चाहे तो सुख का त्याग करे।

नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः ।

नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥७॥

ईधन से आग की, नदियों से समुद्र की, समस्त प्राणियों से मृत्यु की और पुरुषों से कुलटा स्त्री की कभी तृप्ति नहीं होती।

आशा धृतिं हन्ति समृद्धिमन्तकः क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यता ।

अपालनं हन्ति पशूंश्च राजन्नेकः क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम् ॥८॥

आशा धैर्य को, यमराज समृद्धि को, क्रोध लक्ष्मी को, कृपणता यश को और सार-संभाल का अभाव पशुओं को नष्ट कर देता है। इधर एक ही ब्राह्मण यदि क्रुद्ध हो जाय तो सम्पूर्ण राष्ट्र का नाश कर देता है।

अजाश्च कांस्यं रजतं च नित्यं मध्वाकर्षः शकुनिः श्रोत्रियश्च ।

वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीन एतानि ते सन्तु गृहे सदैव ॥९॥

बकरियाँ, कांसे का पात्र, चांदी, मधु, अर्क खींचने का यंत्र, पक्षी, वेदवेत्ता ब्राह्मण, बूढ़ा, कुटुम्बी और विपत्तिग्रस्त कुलीन पुरुष—ये सब आपके घर में सदा मौजूद रहें।

अजोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी ।

विषमौदुम्बरं शङ्खः स्वर्णनाभोऽथ रोचना ॥१०॥

गृहे स्थापयितव्यानि धन्यानि मनुर्ब्रवीत् ।

देवब्राह्मणपूजार्थमतिथीनां च भारत ॥११॥

भारत! मनुजी ने कहा है कि देवता, ब्राह्मण तथा अतिथियों की पूजा के लिए बकरी, बैल, चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घी, जल, तांबे के बर्तन, शंख, शालिग्राम और गोरोचन—ये सब वस्तुएं घर पर रखनी चाहिए।

इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम् ।

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः ॥१२॥

तात! अब मैं आपको यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं सर्वोपरि पुण्यजनक बात बता रहा हूँ—कामना से, भय से, लोभ से तथा इस जीवन के लिए भी कभी धर्म का त्याग न करें।

नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ।

त्यक्त्वानित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये सन्तुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः ॥13॥

धर्म नित्य है, किंतु सुख-दुःख अनित्य हैं, जीव नित्य है, पर इसका कारण (अविद्या) अनित्य है, आप अनित्य छोड़कर नित्यों में स्थित होइए और संतोष धारण कीजिए, क्योंकि संतोष ही सबसे बड़ा लाभ है।

महाबलान् पश्य महानुभावान् प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम् ।

राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान् गतान्निरेन्द्रान् वशमन्तकस्य ॥14॥

धन-धान्यादि से परिपूर्ण पृथ्वी का शासन करके अन्त में समस्त राज्य और विपुल भोगों को यहीं छोड़कर यमराज के वश में गए हुए बड़े-बड़े बलवान् एवं महानुभाव राजाओं की ओर दृष्टि डालिए।

मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति ।

तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्ति चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति ॥15॥



राजन्! जिसको बड़े कष्ट से पाला-पोसा था, वही पुत्र जब मर जाता है तो मनुष्य उसे उठाकर तुरंत अपने घर से बाहर कर देते हैं। पहले तो इसके लिए

बाल छितराये करुण स्वर में विलाप करते हैं, फिर साधारण काठ की भांति उसे जलती चिता में झोंक देते हैं।

अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून् ।

द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र पुण्येन पापेन न वेष्ट्यमानः ॥16॥

मरे हुए मनुष्यों का धन दूसरे लोग भोगते हैं, उसके शरीर की धातुओं को पक्षी खाते हैं या आग जलाती है। यह मनुष्य पुण्य-पाप से बंधा हुआ है, इन्हीं दोनों के साथ परलोक में गमन करता है।

उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातव्यः सुहृदः सुताः ।

अपुष्पानफलान् वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः ॥17॥

तात! विना फल-फूल के वृक्ष को जैसे पक्षी छोड़ देते हैं, उसी प्रकार उस प्रेत को उसके जातिवाले सुहृद् और पुत्र चिता में छोड़कर लौट आते हैं।

अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयंकृतम् ।

तस्मात्तु पुरुषो यत्नाद् धर्मं सञ्चिनुयाच्छनैः ॥18॥

अग्नि में डाले हुए पुरुष के पीछे तो केवल उसका अपना किया हुआ बुरा या भला कर्म ही जाता है इसलिए पुरुष को चाहिए कि वह धीरे-धीरे प्रयत्नपूर्वक धर्म का ही संग्रह करे।

अस्माल्लोकादूर्ध्वममुष्य चाधो महत्तमस्तिष्ठति ह्यन्धकारम् ।

तद् वै महामोहनमिन्द्रियाणां बुध्यस्व मा त्वां प्रलभेत् राजन् ॥19॥

इस लोक और परलोक से ऊपर और नीचे तक सर्वत्र अज्ञान-रूप महान् अंधकार फैला हुआ है, वह इन्द्रियों को महान् मोह में डालनेवाला है राजन्! आप इसको जान लीजिए, जिससे यह आपका स्पर्श न कर सके।

इदं वचः शक्यसि चेद् यथावन्निशम्य सर्वं प्रतिपत्तुमेव ।

यशः परं प्राप्स्यसि जीवलोके भयं न चामुत्र न चेह तेऽस्ति ॥20॥

मेरी इस बात को सुनकर यदि आप सब ठीक-ठाक समझ सकेंगे तो इस मनुष्य लोक में आपको महान् यश प्राप्त होगा और इस लोक तथा परलोक में आपके लिए भय नहीं रहेगा।

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः ।

तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव ॥21॥

भारत! यह जीवात्मा एक नदी है, इसमें पुण्य ही तीर्थ है, सत्यस्वरूप परमात्मा से इसका उद्गम हुआ है, धैर्य ही इसके किनारे हैं, इसमें दया की लहरें उठती हैं, पुण्यकर्म करनेवाला मनुष्य इसमें स्नान करके पवित्र होता है, क्योंकि लोभरहित आत्मा सदा पवित्र ही है।

कामक्रोधग्राहवर्ती पञ्चेन्द्रियजलां नदीम् ।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि सन्तर ॥22॥

काम-क्रोधादिरूप ग्राह से भरी पांच इन्द्रियों के जल से पूर्ण इस संसार नदी के जन्म-मरणरूप दुर्गम प्रवाह को धैर्य की नौका बनाकर पार कीजिए।

प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं विद्यावृद्धं वयसा चापि वृद्धम् ।
कार्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य यः सम्पृच्छन्न न मुह्येत् कदाचित् ॥23॥

जो बुद्धि, धर्म, विद्या और अवस्था में बड़े अपने बंधु को आदर-सत्कार से प्रसन्न करके उससे कर्तव्य-अकर्तव्य के विषय में प्रश्न करता है, वह कभी मोह में नहीं पड़ता।

धृत्वा शिशनोदरं रक्षेत् पाणिपाद च चक्षुषा ।
चक्षुःश्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्गणा ॥24॥

शिशन और उदर की धैर्य से रक्षा करें अर्थात् कामवेग और भूख की ज्वाला को धैर्यपूर्वक सहे। इसी प्रकार हाथ-पैर की नेत्रों से, नेत्र और कानों की मन से तथा मन और वाणी की सत्कर्मों से रक्षा करे।

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी ।
सत्यं ब्रुवन् गुरवे कर्म कुर्वन् न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ॥25॥

जो प्रतिदिन जल से स्नान-संध्या-तर्पण आदि करता है, नित्य यज्ञोपवीत धारण किये रहता है, नित्य स्वाध्याय करता है, पतितों का अन्न त्याग देता है, सत्य बोलता है और गुरु की सेवा करता है, वह ब्राह्मण कभी ब्राह्मणलोक से भ्रष्ट नहीं होता।

अधीत्य वेदान् परिसंस्तीर्य चाग्नी-

निष्ठा यज्ञैः पालयित्वा प्रजाश्च ।

गोब्राह्मणार्थं शस्त्रपूतान्तरात्मा

हतः संग्रामे क्षत्रियः स्वर्गमेति ॥26॥

वेदों को पढ़कर अग्निहोत्र के लिए अग्नि के चारों ओर कुश बिछाकर नाना प्रकार के यज्ञों द्वारा यजन कर और प्रजाजनों का पालन करके गौ और ब्राह्मणों के हित के लिए संग्राम में मृत्यु को प्राप्त हुआ क्षत्रिय शस्त्र से अन्तःकरण पवित्र हो जाने के कारण ऊर्ध्वलोक को जाता है।

वैश्योऽधीत्य ब्राह्मणान् क्षत्रियांश्च

धनैः काले संविभज्याश्रितांश्च ।

त्रेतापूतं धूममाग्राय पुण्यं

प्रेत्य स्वर्गे दिव्यसुखानि भुङ्क्ते ॥27॥

वैश्य यदि वेद-शास्त्रों का अध्ययन करके ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा आश्रितजनों को समय-समय पर धन देकर, उनकी सहायता करे और यज्ञों द्वारा तीनों अग्नियों के पवित्र धूम की सुगन्ध लेता रहे तो वह मरने के पश्चात् स्वर्ग लोक में दिव्य सुख भोगता है।

ब्रह्म क्षत्रं वैश्यवर्णं च शूद्रः क्रमेणैताव्यायतः पूजयानः ।

तुष्टेष्वेतेष्वव्यथो दग्धपापस्त्यक्त्वा देहं स्वर्गसुखानि भुङ्क्ते ॥28॥

शूद्र यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की क्रम से न्यायपूर्वक सेवा करके इन्हें संतुष्ट करता है तो वह व्यथारहित हो पापों से मुक्त होकर देह-त्याग के पश्चात् स्वर्गसुख का उपभोग करता है।

चातुर्वर्ण्यस्यैष धर्मस्तवोक्तो हेतुं चानुब्रुवतो मे निबोध ।

क्षात्राद् धर्माद्धीयते पाण्डुपुत्रस्तं त्वं राजन् राजधर्मे नियुङ्क्ष्व ॥29॥

महाराज! आपसे यह मैंने चारों वर्णों का धर्म बताया है, इसे बताने का कारण भी सुनिए। आपके कारण पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर क्षत्रिय धर्म से च्युत हो रहे हैं, अतः आप उन्हें पुनः राजधर्म में नियुक्त कीजिए।

धृतराष्ट्र उवाच

एवमेतद् यथा त्वं मामनुशाससि नित्यदा ।

ममापि च मतिः सौम्य भवत्येवं यथात्थ माम् ॥30॥

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर! तुम प्रतिदिन मुझे जिस प्रकार उपदेश दिया करते हो, वह बहुत ठीक है। सौम्य! तुम मुझसे जो कुछ भी कहते हो, ऐसा ही मेरा भी विचार है।

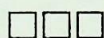
सा तु बुद्धिः कृताप्येवं पाण्डवान् प्रति मे सदा ।
दुर्योधनं समासाद्य पुनर्विपरिवर्तते ॥३१॥

यद्यपि मैं पाण्डवों के प्रति सदा ऐसी ही बुद्धि रखता हूँ, तथापि दुर्योधन से मिलने पर फिर बुद्धि पलट जाती है ।

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं भूतेन केनचित् ।
दिष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ॥३२॥

प्रारब्ध का उल्लंघन करने की शक्ति किसी भी प्राणी में नहीं है । मैं तो प्रारब्ध को ही अचल मानता हूँ, उसके सामने पुरुषार्थ तो व्यर्थ है ।

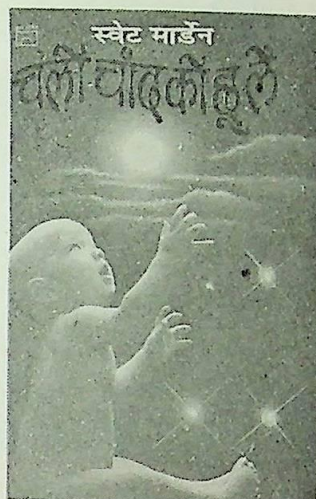
इति श्रीमहाभारते उद्योगपर्वणि प्रजागरपर्वणि
विदुरनीतिवाक्ये चत्वारिंशोऽध्यायः ।



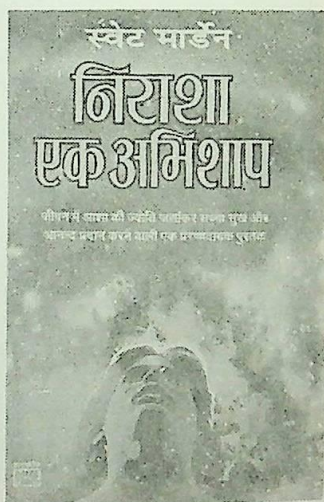
जीवन को नई दिशा देने वाली
विश्व-प्रसिद्ध विचारक स्वेट मार्टेन की दो अनुपम पुस्तकें

चलो चांद को छू लें

सुखद सपनों को बुनते सभी हैं, लेकिन उन्हें साकार हजारों में से कोई एक ही कर पाता है। कैसे जाने-अनजाने में कोई पा लेता है दूर आसमान में चमकते चांद को? क्या आप भी उसे छू सकते हैं? कैसे छुएं? इन सभी प्रश्नों के समाधानों को अपने में समेटे यह पुस्तक आपको विभिन्न उदाहरणों द्वारा यह जानकारी भी देगी कि सफलता की आशा के दीप को आप कैसे विपरीत परिस्थितियों में भी जलाये व बचाये रख सकते हैं, और यह भी कि चाह हो तो कैसे मिलती है राह।



• पृष्ठ: 160 • मूल्य : 30/-



• पृष्ठ : 152 • मूल्य : 30/-

निराशा एक अभिशाप

क्यों और कैसे होती है धूमिल आशा की किरण? क्यों लिपट जाते हैं हम इस अभिशाप में और मजबूर बन ढोते रहते हैं इसे अपनी पूरी जिंदगी भर? इन सभी परिस्थितियों का उदाहरण सहित वैज्ञानिक विवेचन है इस पुस्तक में।

यह पुस्तक जीवन से हारे-थके लोगों के लिए कल्पवृक्ष की छाया है, जिसका आश्रय लेकर जीवन के तापों से ही मुक्ति नहीं मिलती, मन की समस्त कामनाएं भी पूर्ण होती हैं।

अपने निकटतम बुक स्टॉल से प्राप्त करें या मनीऑर्डर भेजकर सीधे हमसे मंगाएं

कोई भी चार पुस्तकें मंगाने पर डाक व्यय माफ

मनोज पब्लिकेशन्स

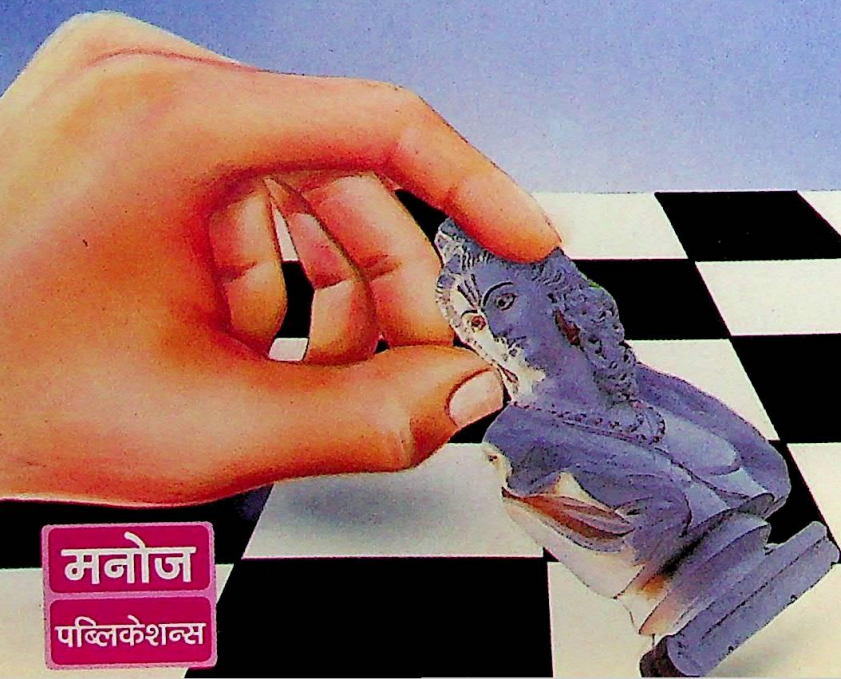
761, मेन रोड बुराड़ी, दिल्ली-110084

☎ 7258546, 7248869, 7258349

विदुर नीति

धर्मराज महात्मा विदुर का समस्त जीवन लोक कल्याण की साधना में बीता। जब दुर्योधन पाण्डवों का अधिकार न देकर युद्ध की धमकी देने लगा तो महाराज धृतराष्ट्र अत्यधिक चिंतित हो उठे और संकट की इस घड़ी में उन्होंने महात्मा विदुर से मार्गदर्शन करने को कहा, तब विदुरजी ने धृतराष्ट्र को शास्त्र सम्मत नीति की जो बातें बताई—वही सब बातें “विदुर नीति” कही जाती हैं।

मानव जीवन की सुख शान्ति में नित्य ही जिन अनदेखे शत्रुओं का आक्रमण हो रहा है और जिन्होंने समस्त प्राणी जगत की शान्ति भंग कर रखी है, उनसे समाज का बचाव तब तक सम्भव नहीं हो सकता, जब तक निर्दिष्ट धर्मनीति और उसके आधारभूत सिद्धान्तों को न समझा जाएगा। यही कारण है कि विदुर जी की नीतियों और सिद्धान्तों पर चलने वाला प्राणी जीवन के किसी भी क्षेत्र में सहज ही हार स्वीकार नहीं कर सकता। आप भी यदि जीवन के सच्चे सुख का आनन्द उठाना चाहते हैं तो “विदुर नीति” नामक यह पुस्तक आपके लिए एक दुर्लभ और अनमोल खजाने से कम नहीं है। बालक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष, शासक-प्रजा, गरीब-अमीर अर्थात् हर वर्ग के लिए दुर्लभ नीतियों से युक्त उपयोगी व अमूल्य पुस्तक।



मनोज

पब्लिकेशन्स